विजय सतसई

विजय तिवारी

विजय सतसई

विजय तिवारी 'विजय'

प्रकाशक :

साहित्य सेतु अकादमी

अहमदाबाद

Vijay Satsai

by : Vijay Tiwari

© लेखक

प्रथम संस्करण : परशुराम जयंती, अक्षय तृतीया,
वि.सं. 2081
10 मई, 2024

मूल्य : ₹ 250/-

ISBN : 978-93-87861-54-1

प्रकाशक :

साहित्य सेतु अकादमी

A-202, क्रिश लक्जुरिया, केनेरा बेन्क के सामने,

शाश्वत महादेव-3 के पासे, वस्त्राल, अहमदाबाद- 382418

कम्प्यूटर टाईप-सेटिंग एन्ड ले-आउट :

कुमार इन्फो

अहमदाबाद

(M) 72111 83881

Priters :

शिवशक्ति ऑफसेट

D-13, रवि एस्टेट, अहमदाबाद - 380 004

अर्पण

परम आदरणीय महाकवि

डॉ. किशोर काबरा जी को

सादर समर्पित...

'कृति के दोहे कीर्ति दें...'

- डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी

हिन्दी कविता का अत्यंत प्राचीन एवं सर्वप्रिय छंद है दोहा । साहित्य के आदिकाल से लेकर आजतक उसकी लोकप्रियता अव्याहत रही है । पाली, प्राकृत, अपभ्रंश हो या अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि भाषाएँ - सभी का भंडार इस छन्द से समृद्ध हुआ है । खड़ी बोली हिन्दी के प्राचीन-नवीन, स्थापित-नवोदित रचनाकारों को इसने समानरूप से आकृष्ट किया है । कबीर, नानक, दादू, तुलसी, जायसी, रहीम, वृन्द, बिहारी ही नहीं, आधुनिक काल के कवियों ने भी दोहों से अपार यश प्राप्त किया है । दोहों की महत्ता का बखान करते हुए नीरज ने लिखा ही है -

जो जन-जन के होंठ पर, बसे और रम जाय ।
ऐसा सुन्दर दोहरा, क्यों न सभी को भाय ॥

सुनने-पढ़ने में दोहा जितना सहज लगता है, इतना सरल वह होता नहीं है । छोटी सी दो पंक्तियों और चार चरणों में बड़ा संदेश कोई सिद्ध रचनाकार ही दे सकता है । अन्योक्ति, समासोक्ति आदि गुणों से सम्पन्न दोहे अपनी लघु परीधि में भी अर्थ की विराटता समेटे रहते हैं और रसिकों को पुलकित करने की क्षमता से युक्त होते हैं । 'बिहारी सतसई' के दोहों के लिए चर्चित है यह उक्ति -

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर ।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर ॥

सतसई परम्परा हाल की 'गाथा सप्तशती' गोवर्द्धनाचार्य की 'आर्या सप्तशती' से होती हुई तुलसी, वृंद, रहीम, मतिराम आदि के सतसई ग्रंथों तक आती है । इस क्रम में 'बिहारी सतसई' सर्वाधिक चर्चित कृति के रुप में परीगणित की जाती है । 700 से अधिक दोहोंवाली इन रचनाओं के क्रम में इन दिनों दोहा शतक, दोहा द्विशती आदि रचनाएँ भी देखी जाती हैं । परन्तु इधर के कुछ वर्षों में मेरी नज़र में किसी आधुनिक कवि की 'सतसई' नहीं आई थी । अत: अहमदाबाद के कवि श्री विजय तिवारी की

'विजय सतसई' की पाण्डुलिपि देखकर मुझे आश्चर्यमिश्रित हर्ष हुआ । दोहों के प्रति स्वाभाविक स्नेह के कारण पहले मैंने कृति का सिंहावलोकन/विहंगावलोकन तो कर लिया लेकिन इस प्रक्रिया ने मुझे इन दोहों को ठहरकर पढ़ने की प्रेरणा दी। कह सकता हूँ कि विविध विषयों पर सीधी-सादी, लेकिन प्रभावी अभिव्यक्तियों के कारण विजयजी के दोहों ने मेरा मन मोह लिया।

श्री विजय तिवारी से मेरा परिचय 'हृदयांगन' संस्था के भव्य वार्षिक अनुष्ठान में देहरादून में हुआ था । उस एक दिवसीय आयोजन के अन्तर्गत दो सत्रों का कवि सम्मेलन भी सम्पन्न हुआ था, जिसमें लगभग चालीस कवियों ने काव्यपाठ किया था। प्रथम-सत्र का गरीमापूर्ण संचालन विजयजी ने किया था । मुझे स्मरण है कि अपनी रचनाओं से उन्होंने श्रोताओं का अपार स्नेह प्राप्त किया था। मैं उस आयोजन से उनका एक दोहा गुनगुनाते हुए लौटा था -

जीभ हिलाई तो मुझे, मिला बहुत अपमान ।
पूँछ हिलाई गैर ने, पाया वो सम्मान ।।

दोहा चाहे भक्तिपरक हो या नीतिपरक; राष्ट्र की गरिमा का बखान करता हो या पारिवारिक सम्बन्धों की महिमा का; सांस्कृतिक गौरव का निनाद करता हो अथवा ओजस्विता का शंखनाद; समाज की संगति - विसंगति का अंकन करता हो या परम्परा - आधुनिकता के द्वन्द्व का विवेचन - समर्थ कवि की लेखनी का स्पर्श पाकर पाठकों/ श्रोताओं के दिल में उतर जाता है। सरल शब्दों में बड़ा संदेश देने का जटिल कार्य ऐसे कवि सहज रुप से कर पाते हैं। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि विजयजी के ये दोहे इस क्षमता से सम्पन्न हैं। उदाहरण स्वरुप प्रस्तुत हैं इसी पुस्तक के कुछ दोहे-

मुझसे सुख का हो रहा, लगातार संवाद ।
मेरे सर पर है अभी, माँ का आशीर्वाद ।।

तेरे कर्मों से अगर, खुश होंगे भगवान
तो बेटी के रूप में, पायेगा वरदान ।।

मानेगा कोई नहीं, कोरा सच मत बोल ।
झूठ अदाकारी जरा, पहले उसमें घोल ।।

बोल नहीं सकता अभी, गूंगा है यह देश ।
भाषा इसकी है नहीं, और नहीं है भेष ।

जन्मभूमि है राम की, अवधपुरी अभिराम ।
इसकी मिट्टी को सदा, करता विश्व प्रणाम ।।

राम-कृष्ण का देश यह, संस्कृतियों का मूल ।।
मोहक इसका रूप है, पावन इसकी धूल ।।

सुख में इतराऊँ नहीं, दुख में नहीं निराश ।
समरस रखना हे प्रभो, बस इतनी है आस ।।

कृति के दोहों से गुजरते हुए मुझे बार-बार याद आ रही थी कवि सूर्यकुमार पाण्डेय (लखनऊ) रचित चार पंक्तियाँ -

'रचना अपनी अंतर-लय से झंकृत होती है,
कवि-वाणी बस शब्द नहीं, वह अमृत होती है ।
जिसको सुनकर-पढ़कर, जनमन रंजित होता हो
वह ही सच्चा कवि, जिसकी कृति उद्धृत होती है ।।'

मुझे विश्वास है कि **'विजय सतसई'** के दोहे सुनकर-पढ़कर काव्य प्रेमी पाठकों का मन प्रफुल्लित तो होगा ही और ये दोहे लोगों की ज़बान पर बस कर उद्धृत भी होंगे।

मैं श्री विजय तिवारी की इस कृति का स्वागत करता हूँ और अपनी ओर से अधोलिखित दोहे के माध्यम से उन्हें शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

कृति के दोहे कीर्ति दें, देवी दें वरदान।
पाठकगण निज प्रेम दें, बढ़े मान-सम्मान ।।

- डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी
वरिष्ठ साहित्यकार
निवृत्त ऐसो. प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
कोलकाता, विश्वविद्यालय
Mob. 9830613313

समाज का आईना है-विजय सतसई

विजय तिवारी को ''विजय सतसई'' के लिए शुभकामनाएँ देते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है।

विजय तिवारी की पुस्तक ''विजय सतसई'' वास्तव में ''सतसई'' शब्द ''सत'' और ''सई'' से बने हुए शब्द का प्रतीक है। जैसा कि ''सत'' का अर्थ सात और सई का अर्थ ''सौ'' है। इस प्रकार सतसई काव्य वह काव्य है जिसमें एक ही कवि के सात सौ छंद होते हैं। सतसइयों में प्रमुख रूप से ''दोहा'' छंद का प्रयोग होता है; ''दोहा'' के साथ ''सोरठा'' और ''बरवै'' छंद का प्रयोग भी सतसईकार बीच बीच में कर देते हैं। सतसइयों, में प्रमुख रूप से श्रृंगाररस की प्रधानता है। श्रृंगारप्रधान सतसईयों में श्रृंगार के साथ नीति तथा भक्ति और वैराग्य के दोहे भी मिलते हैं, तुलसी सतसई में भक्ति के दोहों की प्रधानता है। मुख्य रूप से श्रृंगार और नीति इन दोनों की प्रधानता सतसइयों में देखने को मिलती है।

''विजय सतसई'' में विजय तिवारी के अपने लिखे हुए सात सो दोहे हैं। इन दोहों में उन्होंने अलग अलग विषयों को लेकर अपने भाव के इर्द गिर्द अपने शब्दों में उन्हें पिरो दिया है। पुस्तक के आरम्भ में वे तुलसी सतसई के भक्ति रूप को लेकर प्रभु से प्रार्थना करते हैं और वरदान माँगते हैं। उनके शब्दों में उनकी भक्ति और ईश्वर पर आस्था और विश्वास का प्रमाण है। इसमें प्रारंभ से लेखक विजय तिवारी श्री गणेश, माँ सरस्वती, श्री हनुमान और शिव भगवान का आशीर्वाद माँगते हैं और लिखते हैं

''शक्ति भक्ति औ मुक्ति का, दो मुझको वरदान
बस इतनी है प्रार्थना, सुनिए श्री हनुमान

विजय तिवारी स्वयं एक कवि हैं और कविता एवं ग़ज़ल लिखने में बहुत निपुण हैं। परन्तु अब इस पुस्तक में उन्होंने अलग अलग अनुभूति, भाव और विषय लेकर इस पुस्तक को जन्म दिया है। प्रकृति तथा अपने बड़ों के प्रति अपने जुनून से सात सौ दोहे लिख चुके हैं। कवि विजय जानते हैं कि वे एक कवि तो हैं ही परन्तु वे प्रभु से वरदान मांग रहे हैं कि वे भी मीरा, सूरदास और तुलसी की भाँति लिख सकें और अपना नाम प्रसिद्ध कर सकें।

विजय सतसई के दोहे पढ़ने वाले के भीतर देश प्रेम के भाव जागृत करते हैं। विजय तिवारी को देश से प्रेम है और वह इनकी पुस्तक विजय सतसई में स्पष्ट दिखाई देता है जहाँ ये लिखते हैं भारत की संस्कृति विश्व में महान है। देश प्रेम के

लिए इन्होने कहा है कि धर्म और विज्ञान में भी भारत विश्व में सबसे आगे है। भारत के वीरों की गाथा का वर्णन करते हैं जिसमें विशेषकर सुभाष, लक्ष्मी बाई और महाराणा प्रताप के बारे में लिखा है।

विविध जाती औ' धर्म है, भारत की पहचान ।
है अनेकता में छिपी, इसकी शक्ति महान ।।

मान रहा अब विश्व भी, है बस यही महान ।
श्रेष्ठ सनातन संस्कृति, भारत की पहचान ।।

भारत की संस्कृति सदा, जग में रही महान ।
सागर चरण पखारता, हिमगिरि करे वितान ।।

प्राचीन काल में सतसई एक ही विषय पर केन्द्रित दोहों का संकलन होता था। किन्तु समय के साथ -साथ बदलाव आए और अब तो सतसई में अनेकों विषयों के विविध रंगों से सज्ज दोहे भरपूर मात्रा में पाये जाते हैं। शायद ही कोई ऐसा विषय रहा हो जो दोहों से अछूता रह गया है। इसी तरह "विजय सतसई" पुस्तक में कई तरह के विषयों को लेकर कवि ने दोहों का संकलन तैयार किया है।

कवि के दोहों में मानवता और मानव के स्वभाव के विचार भी झलकते हैं जब वे कहते हैं कि -

"मूर्ख जब उपदेश दे, तब तू हो जा मौन,
उसकी चकचक में भला, तुझे सुनेगा कौन ।।"

"जग को मित्र बनाइये, करिये सब से बात,
पर सतर्क रहिये सदा, कौन कर रहा घात ।।"

इसी तरह विजय तिवारी अपनी पुस्तक सतसई में उत्साहजनक और प्रोत्साहित करते हुए दोहे लिखकर युवकों को जीवन की मंज़िल की ओर बढने के लिए कहते हैं। इनके दोहों से अनुशासन, भ्रष्टाचार, और कानून भी अछूते नहीं रहे हैं।

"अंधे हैं कानून सब, बहरी है सरकार। ...."

जिसके शासन में कभी, दुखी हुआ मज़दूर ...."

एक और दोहा जो राजनीति पर सीधा कटाक्ष है

"राजनीति में आइये, धुल जायेंगे पाप,
वर्ना सच के साथ भी, गुनहगार हैं आप। "

आजकल के समय में जो बजुर्ग माता पिता की हालत है उस पर भी आपने इस प्रकार लिखा है -

बंगले में बेटा रहे, वृद्धाश्रम माँ-बाप,
नये दौर का देखिये, ये कैसा अभिशाप।।

विश्व प्रसिद्ध एक सतसई का नाम उभर कर सामने आता है, और वो है बिहारी लाल की ''बिहारी सतसई'' शृंगार रस से भरपूर इस सतसई ने सतसई परम्परा को विशेष स्थान और गति प्रदान की है। उन्ही का अनुसरण करते हुए कवि विजय ने कुछ शृंगार रस पर भी दोहे लिखे हैं।

''मोहक तेरी हर अदा, मतवाले हैं नैन,
तुझे देखने के लिए, रहते हैं बेचैन ।

मृगनयनी, गजगामिनी, चंद्रमुखी कचनार ।
अद्‌भुत, अतुल अमूल्य है, तेरा रूप अपार ।।

ज्यों ज्यों मैं विजय सतसई को पढ़ती गई तो मुझे नए नए विषयों पर दोहे पढ़ने को मिलते गए। यूँ महसूस हो रहा था कि मैं विजय सतसई के सारे दोहे यहाँ पर दोबारा से लिख दूँ। परन्तु कुछ दोहे मैं अवश्य चाहूँगी कि अपनी शुभकामनाओं में लिखूँ जिनमें कवि विजय ने माँ का आशीर्वाद प्राप्त कर सुख महसूस किया है -

मुझसे सुख का हो रहा, लगातार संवाद ।
मेरे सर पर है अभी, माँ का आशीर्वाद ।।

अतः मैं यह कहना चाहूँगी कि जिस के ऊपर माँ का आशीर्वाद है उस पर प्रभु की कृपा तो सदैव रहती है।

मैं विजय तिवारी को उनकी पुस्तक ''विजय सतसई'' के लिए बधाई एवं कोटि कोटि साधुवाद देती हूँ। शुभकामना सहित आशा करती हूँ कि उनकी लेखनी इसी प्रकार चलती रहे। भविष्य में किसी अन्य विषय पर भी लिख कर वे साहित्य के क्षेत्र में अपना परचम यूँ ही फैलाते रहें।

सहायक व्याख्याता **- सुषमा मल्होत्रा**
क्वींस कॉलेज
सिटी युनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क
न्यूयार्क
एवं
सेवानिवृत्त सहायक प्राचार्य
शिक्षा विभाग न्यू यॉर्क शहर

दुर्गुणों पर सद्‌गुणों की विजय - विजय सतसई

हिंदी साहित्य में सतसई परंपरा का सुंदर-समृद्ध इतिहास प्राप्त होता है। हम जानते हैं कि हिंदी साहित्य के इतिहास के विविध कालों में हमें अनेक साहित्यकारों द्वारा लिखित सतसइयाँ प्राप्त हुई हैं। हम सबके लिए यह प्रसन्नता और गौरव का विषय है कि 21वीं सदी में भी यह परंपरा आगे बढ़ रही है तथा इस संदर्भ में विजय तिवारी जी द्वारा रचित विजय सतसई भी सतसई परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी बन पड़ी है। भारतीय संस्कृति के अनुरूप मंगलाचरण के रूप में विविध देवी देवताओं की स्तुति एवं प्रार्थना से शुरू हुई इस सतसई में कुल 772 दोहों का समावेश है। **''वसुधैव कुटुंबकम्''** तथा **''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय''** की भावना से प्रेरित आस्थावान कवि भक्ति, शक्ति और मुक्ति की कामना करते हुए अपने आराध्य देवी-देवताओं के प्रति नतमस्तक होता है तथा उनसे मानवता की राह पर चलने एवं अहं सहित तमाम दुर्गुणों से मुक्ति पाने की कामना करता है। अपनी मिट्टी से जुड़े हुए इस कवि का धरा के प्रति, संस्कृति के प्रति, देश के प्रति प्रेम गुजरात तथा भारत का गौरव गान करने वाले दोहों में साफ़ नज़र आता है। कवि लिखता है -

टुकड़ा नहीं जमीन का, मेरा भारत देश ।
मानवता महके यहाँ, जीवित है परिवेश ।।

अपनी मिट्टी की खुशबू लिए हुए अनेक दोहे हमें सतसई में देखने को मिलते हैं। हमारी भारतीय संस्कृति हजारों वर्षों पुरानी संस्कृति है और भारत की रत्नगर्भा धरती देशभक्तों, वीरों, महापुरुषों, संत- महात्माओं की धरती है और कवि ने भी अपने दोहों में अलग-अलग जगह अलग-अलग महानुभावों के योगदान को भी यहां इंगित किया है। मात्र देश ही नहीं बल्कि सरहद पर जाकर देश की रक्षा करने वाले सेना के जवानों को भी सतसईकार भूला नहीं है -

कैसी भी हो आपदा, सेना करे बचाव ।
प्रेमभाव सबके लिए, कोई नहीं दुराव ।।

वैर-वैमनस्य को भूलकर मानवता की राह को सर्वश्रेष्ठ मानने वाला कवि अपने दोहों के माध्यम से देश को सर्वधर्म समभाव का एवं हिंदू-मुस्लिम एकता का भी संदेश देता है और देश के लोगों को एकता के सूत्र में बंधने के लिए प्रेरित करता है।

संस्कृति के उत्तमांशों से समन्वित हमारी परंपराएं भारतीय संस्कृति की परिचायक हैं। साहित्योपासक कवि भी साहित्य ज्ञान की समृद्ध परंपरा को प्राप्त करना चाहता है। इसलिए लिखता है, -

तुलसी, मीरा जायसी, सूरदास रसखान ।
उनके जैसा लिख सकूँ, ऐसा चाहूँ ज्ञान ।।

लोकमंगल की कामना से युक्त कवि लोगों को काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या जैसे दुर्गुणों से मुक्त होने का आग्रह कर मन को साफ़ रखने की हिदायत भी देता है–

तन की चिंता छोड़ दे, मन को कर ले साफ़ ।
वरना कोई भी 'विजय', नहीं करेगा माफ़ ।।

हम जानते हैं कि सत्य का मार्ग मुश्किल तो है लेकिन अपराजेय है ।सत्य और अहिंसा का पक्षधर कवि मानव को विविध व्यसन, मांसाहार आदि को त्यागने और दीन दुखियों की सेवा करने का संदेश देते हुए निर्भय होकर सत्य के मार्ग पर अडिग रहने का आह्वान करता है–

दीप जलाकर सत्य का, मत हो तू भयभीत ।
तूफानों में भी हुई, सदा इसी की जीत ।।

कहा गया है – यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।। अर्थात जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ नारियों की पूजा नहीं होती है वहाँ समस्त (अच्छी से अच्छी) क्रियाएं (कर्म) निष्फल हो जाती हैं। कवि भी अपने दोहों के माध्यम से नारी के हर रूप को सम्मानीय – स्तुत्य मान नारी शक्ति की वंदना करता है, विशेष कर नारी के माता स्वरूप की आराधना करता हुआ कहता है –

माँ के जैसा कौन है, माँ तो है बेजोड़ ।
माँ की तुलना के लिए, कौन करेगा होड़ ।

मानव मात्र के लिए बड़ा सौहार्द और प्रेम होने के कारण कवि का हृदय किसी भी प्रकार के शोषण, अन्याय और अत्याचार का सख्त विरोध करता है। यही कारण है कि वह मज़दूर, श्रमिक और किसान की पीड़ा को देखकर द्रवित को उठता है–

सूखे सारे खेत हैं, सूखे सब खलिहान ।
हाल यही सब देख के, चिंतित बहुत किसान ।।

कोई संदेह नहीं है कि घर के बुजुर्ग घर की नींव होते हैं। किंतु हम देखते हैं कि सम्मान और प्यार के अधिकारी ये बुजुर्ग अपने ही घर में उपेक्षा, अपमान और अवहेलना के शिकार होते हैं और चाहे–अनचाहे परिवार और परिस्थितियों से त्रस्त एवं विवश होकर वृद्धाश्रम में धकेल दिए जाते हैं। वर्तमान समय में वृद्धाश्रमों में वृद्धों की संख्या का बढ़ते जाना समाज पर प्रश्नचिह्न खड़ा करता है। कवि के हृदय में भी ऐसे क्षोभनीय स्थिति को लेकर मलाल है –

वृद्धाश्रम संस्कृति नयी, पनपी चारों ओर ।
ऊषा में भी दिख रही, मुझको काली कोर ।।

अपने देश धरती से प्रेम करने वाला कवि देश की समस्याओं को लेकर भी पूर्णतः सजग है। इसी कारण वह पर्यावरण के प्रति अपनी चिंता–संवेदना व्यक्त करता है। नदी, धरती, हवा प्रदूषण का विरोध करता है तथा मानव को चेतावनी देता है कि अगर प्रदूषण और पर्यावरण से छेड़छाड़ को नहीं रोका गया तो वह दिन दूर नहीं जब उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा –

हम कुदरत के नियम के, रहें सदा अनुकूल ।
जड़ समेत मिट जायंगे, अगर गए प्रतिकूल ।।

मानव की स्वार्थ प्रवृति तथा लोभ –लालसा के कारण आज पर्यावरण असुरक्षित एवं असंतुलित होता जा रहा है। हर तरफ प्रदूषण देखने को मिलता है। यही कारण है कि कवि कुदरती आपदाओं को कहीं ना कहीं मानव सर्जित मानता है–

कुदरत के ही कोप हैं, आँधी या तूफान ।
छेड़ा है तूने 'विजय', आया तभी उफान ।।

बड़े साफ़ शब्दों में कवि पर्यावरण की और से बेपरवाह लोगों को उनकी करनी के लिए खरी–खरी सुनाता है –

नदियों को दूषित किया, वन को दिया उजाड़ ।
धरती डाली खोद सब, काटे सभी पहाड़ ।।

सतसई के अनेक दोहों में वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य को लेकर भी कवि चिंतित – निराश दिखाई देता है और नेताओं के दोगले चरित्र पर वार करता है –

नेताओं ने देश का, ऐसा किया विनाश ।
धर्म, अर्थ और नीति पर, नहीं रहा विश्वास ।।

शिक्षा तथा शैक्षिक संस्थानों के गिरते स्तर को लेकर भी कवि अपना रोष जाहिर करता है–

जोर शोर से हो रहा, शिक्षा का व्यापार ।
डूबे हैं आकण्ठ ये, राजा साहूकार ।।

सोशल मीडिया के बढ़ते प्रचार प्रसार से हम सब परिचित हैं और जिस तरह से हर सिक्के के दो पहलू होते हैं।इस तरह से सोशल मीडिया के कारण लोगों को एक मुक्ति मंच मिला है और अपनी अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने का एक उम्दा रास्ता प्राप्त हुआ है। किंतु वहीं पर कविता के नाम पर कुछ भी परोस देने वालों की बाढ़ को देखकर भी कवि को हैरानी है। साथ ही कविता के गिरते स्तर को देखकर भी वह बहुत परेशान है–

कवि सम्मेलन में हुआ, बस फूहड़ परिहास ।
और विदूषक मसखरे, करते हैं उल्लास ।।

और लोगों के हाथों होती कविता की दुर्गति को देखकर कवि का दुखी मन लिखता है–

मोबाइल पर हो रहे, कवि सम्मेलन खूब ।
कविता पढ़ पाओ सनद, और मिटाओ ऊब ।।

स्तरीय कविताओं तथा गरिमामयी कवि –सम्मेलनों की कमी कवि को बेहद अखरती है –

कविताओं को देखकर, कलम हो गई बंद ।
तुकबंदी बेहाल है, हार गए हैं छंद ।।

भाषा मात्र सम्प्रेषण का माध्यम नहीं होती बल्कि राष्ट्र का गौरव एवं उसकी पहचान होती है। कवि अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व को देख कर क्षुब्ध है। लोगों की हिंदी भाषा के प्रति उदासीनता कवि को पीड़ा देती है। हिंदी भाषा की महिमा उजागर करते हुए कवि का भाषा–प्रेम यहाँ पर व्यक्त हुआ है–

भाषाओं में विश्व की, हिंदी बहुत सशक्त ।
इसमें मन के भाव सब, हो सकते हैं व्यक्त ।।

पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है। कवि पत्रकारिता के महत्व को समझता है कि पत्रकारिता का निष्पक्ष और सत्य निष्ठ होना बेहद जरूरी है। किंतु जब पत्रकारिता में यह गुण नहीं रहते तो वह अपना अर्थ खो देती है तथा लोग वास्तविकता से अनभिज्ञ रह जाते हैं। इसलिए कवि पीत -पत्रकारिता पर व्यंग्य कसता है -

समाचार सब बिक रहे, बिकते हैं अखबार ।
पत्रकारिता बन गई, चाट मसालेदार ।।

वर्तमान समय में संबंधों में स्वकेंद्रीयता, स्वार्थ और महत्वाकाँक्षाएँ बढ़ी हैं। किसी विलुप्त होती प्रजाति की भाँति आज संयुक्त परिवार भी खत्म होते जा रहे हैं और उनका स्थान एकल परिवारों ने ले लिया है। कवि की लेखनी इस ओर भी इशारा करती है-

घर टूटा, आँगन गए, बस रह गए मकान ।
पक्का लालच स्वार्थ है, कच्चे हैं बस कान ।।

संवेदनहीनता की समस्या विकराल है। संबंध औपचारिक और सतही बन गए हैं। अब संवेदना प्रदर्शित करने के लिए इमोजी प्रयुक्त किए जाने लगे हैं। यंत्रवत मानव जीवन की इस कटु सच्चाई के संदर्भ में कवि लिखता है-

मोबाइल पर निभ रहै, सामाजिक संबंध ।
लेकिन हृदय कपाट तो, भीतर से है बंद ।।

आत्मविश्वास हर मनुष्य के विकास के लिए बेहद जरूरी है जो मनुष्य को जीवन-संघर्ष से सफलतापूर्वक पार उतरने के लिए प्रेरित करता है। यही आत्मविश्वास कवि की ताकत है और इस बात की झांकी हमें उनके कई दोहों में मिलती है-

नन्हा दीपक ही सही, लेकिन हूँ दमदार ।
घने अंधेरे काँपते, माने मुझसे हार ।।

हमारी संस्कृति में कर्म का बहुत महत्व है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'-कर्म की ओर प्रेरित करने तथा जीवन जीने की कला सिखाने वाला सूत्र है। प्रारब्ध से अधिक पुरुषार्थ पर बल देने वाला सतसईकार मानव मात्र को कर्मठ बने रहने का संदेश देते हुए निरंतर कर्म में प्रवृत रहने और कठोर परिश्रम करने का आह्वान करता है -

श्रम को इतना साध तू, हो ईश्वर हैरान ।
खुश होकर फिर वह कहे, अब तो ले वरदान ।।

इस सतसई के सफ़र से गुजरने के बाद यह स्पष्ट महसूस होता है कि इस दूरदर्शी कवि के जीवन अनुभव बहुत व्यापक और गहन हैं और यही कारण है कि उनके दोहों में हमें मानव जीवन तथा समाज के यथार्थ निरूपण के विविध चित्र सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं जो समाज- जीवन की दशा-दिशा से हमें परिचित करवाते हैं। इस संदर्भ में कवि की आत्मस्वीकृति भी प्राप्त होती है-

अनुभव सब दिल से लिखे, और लिखे जज़्बात ।
कभी सुखों की रोशनी, कभी दुखों की रात ।।

सतसई के अंत में हम देखते हैं कि जीवनानुभवों से समृद्ध प्रौढ़ावस्था को प्राप्त

कवि का हृदय पुनः बाल्यावस्था की ओर लौटने को आतुर है। बचपन के प्रति कवि का प्रेम यथावत है। कहीं ना कहीं हमें लगता है कि कवि समाज और जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं से बेहद परेशान और आहत है और शायद इसी कारण वह उस बचपन में लौट जाना चाहता है, वह बचपन जो निर्दोष, निष्कपट, मासूम, और सहज– सरल है।

प्रकृति का तो सवर्धन–सरंक्षण होना चाहिए। प्राकृतिक सौदर्य मानव जीवन के लिए ईश्वर का दिया हुआ अनमोल तोहफ़ा है। सतसई में प्राकृतिक सौंदर्य के भी कुछ दोहे प्राप्त होते हैं–

गेंदा, जूही, मोगरा, महके हरसिंगार ।
आभा बहुत गुलाब की, खूब खिला कचनार ।।

विविध रसों का निर्वाह सतसई की विशेषता है। शृंगार जिसे रसराज कहा जाता है, के कई दोहे हमें यहाँ प्राप्त होते हैं।श्रृंगार में नख –शिख वर्णन तथा विरह–मिलन से संबंधित पद हैं। किंतु विशेष रूप से कवि का मन शृंगार के वियोग पक्ष की अपेक्षा संयोग पक्ष में अधिक रमा है। कवि नायिका का रूप वर्णन करते हुए उसके सौन्दर्य को विविध उपमाओं से अलंकृत करता है –

मृगनयनी गजगामिनी, चंद्रमुखी कचनार ।
अद्भुत अतुल, अमूल्य है, तेरा रूप अपार ।।

दोहा छंद का निर्वाह करते हुए भावपक्ष की दृष्टि से सबल एवं किसी भी प्रकार की क्लिष्टता या दुरूहता से रहित सरल– सहज तथा संप्रेषणीय भाषा में लिखी इस **विजय सतसई** में हमें कवि के लोकमंगल से पूरित संवेदनशील किंतु सजग हृदय के दर्शन होते हैं। पूरी सजगता –सतर्कता से जीवन और समाज में फैले दुर्गुणों, समस्याओं, चुनौतियों को कवि अपने निशाने पर रखता है, वहीं वह मनुष्य जीवन को सुंदर बनाने वाले सभी सद्गुणों की पैरवी भी करता दिखाई देता है।

हमारी 21वीं सदी जो अब 24 साल की हो गई है और जहाँ कई विधाएँ समय की मार झेल रही हैं – ऐसे में विजय तिवारी जी की ओर से हिंदी साहित्य को 772 दोहों की साहित्य निधि प्राप्त हुई है। जीवन जीने की कला की ओर इंगित कर जीवन –जगत की समस्याओं और विसंगतियों को ताक पर रख मानवता और सद्गुणों की राह पर चलने और दुर्गुणों को छोड़ परिश्रम और पुरुषार्थ के माध्यम से मनुष्य को जीवन में आगे बढ़ने का सुंदर संदेश दे रही है। इस समय साहित्य में एक अच्छी सतसई का आगमन हिंदी साहित्य समृद्धि की संभावनाओं की ओर शुभ संकेत है जो प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है। माँ सरस्वती की कृपा विजय जी पर सदैव बनी रहे और उनकी लेखनी अनवरत चलती रहे, ऐसी मंगल कामना करती हूँ तथा आशा करती हूँ कि पाठक वर्ग के लिए यह सतसई संग्रहणीय और स्पृहणीय सिद्ध होगी।

दिनांक–1–5–2024
गुजरात स्थापना दिवस

– डॉ. अनु मेहता
आचार्य एवं कवयित्री
आनंद इंस्टिट्यूट ऑफ़ पी.जी.स्टडीज इन आर्टस,
आनंद, गुजरात।

विजय सतसई में जीवन के रंग

वर्तमान में सतसई हिन्दी साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा के रूप में प्रचलित है । यह मुक्तक काव्य की एक विशिष्ट विधा के रूप में ख्यात है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसके अंतर्गत कविगण 700या 700 से अधिक दोहे लिखकर एक ग्रंथ की रचना करते हैं। 'सत्' और 'सई' शब्द से सतसई शब्द का निर्माण हुआ है, जिसका अर्थ सामान्यत: सात सौ है। अत: सतसई वह काव्य रचना है जिसमें सात सौ छंद होते हैं।

प्रस्तुत संकलन 'विजय सतसई' 772 दोहों का संकलन है। विजय जी जिन्हें मैं श्रद्धा से भाई साहब बुलाती हूँ, मुख्य रूप से कवि हैं, परंतु कवि के साथ साथ गीत, छंद बद्ध कविता, सवैया, कवित्त आदि में भी नित निरंतर कलम चलाते रहे हैं। हिन्दी साहित्य की अत्यंत लोकप्रिय विधा छंद, दोहा जिससे संपूर्ण विश्व प्रभावित है जो स्वयं कवि के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त हुआ है "भला मैं कैसे इससे बच सकता था।" कवि का मूल स्वर ग़ज़ल है, परंतु विजय सतसई लिखकर इन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि दोहा सवा शेर है ।

विजय सतसई में मुख्य रूप से जीवन के हरेक रंग को बड़ी गहराई से रंगा गया है जैसे देश भक्ति, ईश्वर आराधना, राष्ट्रीय चेतना, दर्शन, भय, त्रास, कुंठा, संयोग-वियोग, रिश्ते-नाते आदि विषयों को अत्यंत यथार्थ रूप में रूपाकार किया गया है।

कवि विजय की यह अपनी खास विशेषता है कि सतसई परंपरा के समस्त कवियों को भी सहृदयता के साथ स्मरण करते हुए अपनी रचना को जोड़ने का सुन्दर प्रयास किया है। विजय सतसई की यह पंक्ति पढ़कर ही यह एहसास हो जाता है कि कवि ने जीवन और जगत को कितना निकट से जाना और भोगा है जो इस प्रकार व्यक्त हुआ है-

रामनाम जप छोड़कर, खुद को ही पहचान ।
तेरे भीतर हैं बसे, त्रिभुवनपति भगवान ।।

वास्तव में मनुष्य यदि खुद को पहचान ले तो जीने की कला वह खुद ब खुद सीख लेगा। अपनी रचना में कवि ने नीति और रीति का भी अत्यंत चित्रात्मक वर्णन किया है जो दिल को छू लेता है और हम भावविभोर हो जाते हैं।

छल, कपट, स्वार्थ जो जन जन में बसा है और जन जन इस रोग से ग्रस्त है उस पर भी कवि ने करारा प्रहार किया है।

स्वार्थ, कपट, छल से सदा, रहना कोसों दूर ।
होगी तेरी प्रार्थना, तभी वहाँ मंजूर ।।

कवि लोगों को अपने कर्म के प्रति सचेत भी करना चाहते हैं कि छल, कपट, स्वार्थ आदि जितने भी अमानवीय गुण हैं। उससे दूर रहने में ही हमारी भलाई है और तभी हमारी प्रार्थना स्वीकार होगी अन्यथा हम दर दर भटकते रहेंगे और कोई हमारी सुनने वाला नहीं होगा। इन दोहों में एक ओर जहाँ कवि स्वयं से कुछ कहते हैं वहीं दूसरी ओर जीवन के यथार्थ का भी अत्यंत मार्मिक और यथार्थ वर्णन करते हैं जो संपूर्ण मानव जाति के लिए प्रेरणा स्रोत है। इस प्रकार विजय सतसई में जीवन के विभिन्न रंगो को चित्रांकित किया गया है।

मेरी शुभकामना है आपकी कलम यूँ ही नित निरंतर चलती रहे, शब्द यात्रा सदैव गतिमान रहे।

- डॉ. पूनम झा
प्राध्यापक-हिन्दी विभाग
नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय,
काठमांडू-नेपाल

विविध विषयों एवं समसामयिक समाज का प्रतिबिंब : विजय सतसई

– डॉ. धीरज वणकर

दरअसल कविता हृदय से उद्भवित वह अभिव्यक्ति है जो सदैव परिवेश से प्रभावित होती है। कविता गहरे दायित्वबोध की सार्थक अभिव्यक्ति है। समाज की विसंगतियों – विद्रूपताओं के खिलाफ़ कविता आक्रोश व्यक्त करने के साथ ही मनुष्य में चेतना का संचार करती है। पाश्चात्य आलोचक मैथ्यू आर्नल्ड के मतानुसार कविता जीवन की आलोचना है। वैसे साहित्य समाज का दर्पण भी है और दीपक भी। साहित्यकार समाज में जन्म लेता है, पलता है और आगे बढता है। साहितयकार समाज में जो देखता है, सुनता है और अनुभव करता है वही साहित्य में प्रतिबिंबित होता है। समाज में विचारों के द्वारा ही समस्त कार्य संपादित होते हैं। साहित्य विचारों का समूह होता है। अत: साहित्य में उजागर विचारों की गुप्तशक्ति संश्लिष्ट होकर समाज का नेतृत्व करती है। समाज को गतिशीलता प्रदान करने में साहित्य की महती भूमिका सिद्ध होती है। कविता मानव भावनाओं को मूर्तरुप प्रदान करती है और जीवन की सार्थकता को व्याख्यायित करती हैं। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि साहित्य मनुष्य के जीवन एवं जगत, आत्मा एवं परमात्मा, राष्ट्र एवं समाज, आनंद एवं विषाद, महानता तथा हीनता का एक सबल मानदंड है। साहित्यकार में साधारण व्यक्ति की अपेक्षा अधिक संवेदनशीलता, सहानुभूति, सहृदयता तथा उत्तेजनापूर्ण भावनाएँ निहित रहती हैं। इन्हीं गुणों के कारण कवि में अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति अधिक प्रबल रहती है। साहित्य ही तो समाज को समय-समय पर नई प्रेरणाएँ देता है।

विजय तिवारी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त, मशहूर ग़ज़लकार हैं। सदैव कुछ न कुछ लिखना पढ़ना उनका स्वभाव है। हिन्दी साहित्य अकादमी गांधीनगर से 'फल खाए शजर' और 'आक़ा बदल रहे है' ग़ज़ल संग्रह पुरस्कृत है। साथ ही अनेकों सेमिनारों में विविध विषयों पर प्रस्तुत इनके लेखों का संग्रह, 'साहित्य, साहित्यकार और वैश्विक धरोहर' यह भी हिन्दी साहित्य अकादमी, गांधीनगर से पुरस्कृत है। इतना ही नहीं राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर की कई साहित्यिक संस्थाओं ने तिवारीजी की साहित्य साधना को नवाजा है। उनके संग्रह – 'निर्झर', 'फल खाए शजर', 'आका बदल रहे हैं' (ग़ज़लसंग्रह), 'धरा से गगन तक' – भाग – 1-2 का जिक्र किया जा सकता है। 'धरा से गगन तक-2' संकलन में विश्व के 21 देशों के 198 प्रसिद्ध कवियों

की कविताएँ हैं। 14 सितम्बर 2023 में प्रकाशित इस काव्य-संकलन की वैश्विक स्तर पर भूरि भूरि प्रशंसा की जा रही है। हिन्दी में सतसई की सुदीर्घ परम्परा रही है। सर्वाधिक चर्चित एवं प्रसिद्ध सतसई है - 'बिहारी सतसई।' सतसई परंपरा को समृद्ध करने में गुजरात के सतसईकारों का योगदान भी रहा है। गुजरात की हिन्दी सतसई में मध्यकालीन कवि दयाराम की 'दयाराम सतसई', आधुनिक काल में 'किशोर सतसई', 'देसाई सतसई' और 'विजय सतसई' हमें प्राप्त हुई है। यह हमारे लिये गौरव की बात है। सतसई लिखना आसान काम नहीं है। दोहा छंद में 700 दोहे लिखने पर 'सतसई' कहलाती है। हालाकि हिन्दी में दोहा अपभ्रंश के माध्यम से आया है। अपभ्रंश के बाद आदिकाल में भी हमें दोहा साहित्य मिलता है। अमीर खुशरो, ढोला-मारुरा-दूहा, 'वसंतविलास' आदि तत्पश्चात् भक्तिकाल एवं रीतिकाल में भी कबीर, तुलसी, मतिराम, रहीम आदि कवियों में प्रचुरमात्रा में दोहे मिलते हैं। 'विजय सतसई' के एक एक दोहे बेहद मार्मिक हैं।

कवि विजय तिवारी ने दोहे पर अपना हाथ आजमाया है और उसमें खरे उतरे हैं। 'विजय सतसई' इसका उदाहरण है। प्रस्तुत सतसई में 772 दोहों का समावेश है। 'विजय सतसई' में आपको विषय - वैविध्य प्रचुर मात्रा में मिलेगा। इसके पीछे कवि की निरंतर अध्ययनशीलता कारणभूत है। प्रस्तुत सतसई के एक-एक दोहे कवि के देखे एवं भोगे हुए क्षणों का जिन्दा 'आईना' है। वस्तुतः यह दोहे देश एवं दुनिया की समसामयिक परिस्थितियों की बोलती तस्वीर है। कवि ने सांप्रत समाज की विविध समस्याओं, विसंगतियों तथा विषमताओं का बेबाकी से चित्रण किया है। विजय तिवारी ने सच को सीधे-सीधे कह दिया है। कुछ दोहे मानवता के मूल्य प्रस्थापित करने की नई चेतना जगाते हैं। प्रत्येक सर्जनात्मक कृति के प्रणयन में फिर वह भले ही किसी रचनाकार की स्वांतः सुखाय वृत्ति या भक्त की एकान्त गहन आध्यात्मिक अनुभूतियों की तन्मयता से ही क्यों न उद्भूत हुई हो - रचनाकार के सामने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक विशिष्ट पाठक-वर्ग रहता ही है।

'विजय सतसई' में मंगलाचरण, भगवद्स्तुति, भारतीय संस्कृति, भारत के वीरजवानों, नाम महात्म्य, विवेक, साम्प्रदायिक दंगे, सर्वधर्म समभाव, बेटी की महत्ता, माँ की महिमा, जीवन की क्षणभंगुरता, आपाधापी से त्रस्त मनुष्य, मजदूरों की व्यथा, वर्तमान में फैली लूटपाट एवं धोखाधड़ी, शून्य की महत्ता, चापलूसी - चमचागीरी, पर्यावरण पर मंडराते संकट, धरती क्या-क्या नहीं देती, विविध ऋतुओं, बचपन की मधुर यादें, मेले का मज़ा, कृषक जीवन आदि के दोहे हैं। महाकाव्य की भांति विजय सतसई के प्रारंभ में मंगलाचरण किया गया है। प्रत्येक रचनाकार यह चाहता है कि ग्रंथ निर्विघ्न रुप से संपन्न हो। विजय तिवारी जी ने गणेश, सरस्वती विद्या की देवी, हनुमान, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, शिव की स्तुति की है जैसे -

मोदक इनको प्रिय लगें, इनके पिता महेश।
सर्वप्रथम पूजो इन्हें, इनका नाम गणेश॥

माता वीणावादिनी, चरणों में है शीश ।
तेरे गुण गाऊँ सदा, दे मुझको आशीष ।।

भगवद् स्तुति करते हुए सतसईकार श्रीराम एवं कृष्ण महिमा का गुण कुछ इस प्रकार करते हैं –

रामनाम जप छोड़कर, खुद को ही पहचान ।
तेरे भीतर हैं बसे, त्रिभुवन पति भगवान ।।

राम–कृष्ण भारतवासी के आस्था केन्द्र हैं। राम–कृष्ण का नाम जप भवसागर पार कराता है इनके चरणों की धूल पावन है –

राम-कृष्ण का देश यह, संस्कृतियों का मूल ।
मोहक इसका रूप है, पावन इसकी धूल ।।

मौजूदादौर में संचारक्रांति के कारण दुनिया मुट्ठी में आ गई है, दूरिया कम हुई हैं किन्तु नजदीकियाँ भी कम होती गई हैं। आदमी स्वकेन्द्रित होता जा रहा है। इन्सान–इन्सान के बीच के फासले बढ़ते जा रहे हैं। कवि विजय जी मानवता की चिंता करते हुए भगवान से प्रार्थना करते हैं –

बस इतनी है प्रार्थना, हे मेरे भगवान ।
मानवता मुझ में रहे, बना रहूँ इन्सान ।।

मानवमात्र के कल्याण की उमदा भावना भी दृष्टव्य है –

हे ईश्वर, इस विश्व के, करदे सब दुःख दूर ।
या फिर इतनी शक्ति दे, मदद करूँ भरपूर ।।

सतसईकार विजय तिवारी की प्रिय विद्या गीत–गज़ल है। उनके गीत–गज़लों की कई साहित्य प्रेमियों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की है। कई राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय कवि संमेलन में विजय जी गीत–गज़ल का पठन करते हैं तो श्रोतागण में से करतल ध्वनि के साथ 'वाह ईर्शाद' सुनाई देता है। आज भी कवि इस विद्या में पहचान और मिले इसे बयाँ करते हुए लिखते हैं –

गीत-ग़ज़ल से विश्व में, मुझे मिले पहचान ।
हे भगवन दे दीजिये, मुझको यह वरदान ।।

हमारे देश का इतिहास गौरवशाली रहा है। आज हम विश्वगुरु बनने जा रहे हैं। वेद–पुराण, रामायण–महाभारत जैसी कालजयी कृतियों ने विश्व में अपनी अमिट छाप बनाली है। भारत ने दुनिया को बहुत कुछ दिया इसका प्रमाण ये दोहे हैं –

दुनिया को हमने दिया, आयुर्वेद महान ।
इसके जैसा विश्व में, नहीं कहीं विज्ञान ।।

है भूगोल-खगोल का, जितना जग को ज्ञान ।
उससे ज्यादा जानते, हम उनका विज्ञान ।।

परिश्रम से सबकुछ हाँसिल किया जा सकता है। कर्म से आदमी की पहचान बनती है। 'श्रीमद् भगवद्गीता' के कर्मयोग में इसकी महत्ता दर्शायी गई है। विजय तिवारी इसे रेखांकित करते हैं –

भगवद् गीता ने दिया, हमें कर्म सिद्धान्त ।
छिपा हुआ इस ग्रंथ में, पूरा ही वेदांत ।।

आजकल सनातन धर्म की बात जोरो-शोरों से चल रही है। भारत देश में विविधता में एकता है। यहाँ के लोग मनभावन हैं। दुनिया में भारतीय संस्कृति की विशिष्ट पहचान है। पूर्वप्रधान मंत्री अटलबिहारी वाजपेयी के शब्दों में कहूँ तो –

हमारा देश ये कोई भूमिका टुकड़ा नहीं है,
ये तो जीता जागता राष्ट्र पुरुष है ।
ये वंदन की भूमि है अभिनंदन की भूमि है,
ये अर्पण की भूमि है ये तर्पण की भूमि है,
ये राम और कृष्ण की जन्मभूमि है,
बुद्ध और महावीर की तपोभूमि है...
यहाँ का जन-जन हमें प्राणों से भी प्यारा है,
यहाँ की नदी-नदी हमारे लिये गंगा है,
यहाँ का कंकर-कंकर हमारे लिये शंकर है ।।

भारतीय सनातन धर्म एवं संस्कृति की गौरवगाथा की सराहना करते हुए सतसईकार ने लिखा है –

मान रहा अब विश्व भी, है बस यही महान ।
श्रेष्ठ सनातन संस्कृति, भारत की पहचान ।।

टुकड़ा नहीं ज़मीन का, मेरा भारत देश ।
मानवता महके यहाँ, जीवित है परिवेश ।।

वीरों की है भूमि यह, है अद्भुत इतिहास ।
उत्सव में भी रंग भरे, जन-जन में उल्लास ।।

कबीर की अमृत वाणी की तरह विजय तिवारी किसी को न सताने की तथा मनुष्यजीवन क्षणभंगुरता की हक़ीक़त को कुछ इस प्रकार पेश करते हैं –

दीन-दुःखी की ले दुआ, होगा तभी विकास ।
कभी किसी को मत सता, होगा तेरा नाश ।

धनदौलत सब कुछ यहीं, जाना है जब छोड़ ।
तो क्यों तू बेकार में, उन्हें रहा है जोड़ ।।

गौरतलब है कि '**विजय सतसई**' में हमें विषय वैविध्य प्रचुर मात्रा में मिलता है, इसके पीछे सतसईकार का गहन अध्ययन कारण भूत है । बेटी, नारी एवं माँ की सहजता से महिमा गाते हुए कवि बताते हैं कि बेटी है तो सब कुछ है, कवि अप्रत्यक्ष रूप से कन्याभ्रुण हत्या पर इशारा कर रहे हैं । माँ ममता एवं वात्सल्य की मूर्ति है तो नारी सहनशीलता का पर्याय है इस बात प्रमाण देखिए -

बेटी से ही वंश को, मिलती है संतान ।
फिर भी धीरज से सदा, सहती सब अपमान ॥

बेटी है गौरव सदा, है यह कुल की आन ।
रत्न बड़ा अनमोल है, रख इसका तू ध्यान ॥

माँ से बढ़कर दुनिया में कोई नहीं है, वह संतान के लिये क्या-क्या नहीं सहती । माँ है तो सबकुछ है -

झेल प्रसव की वेदना, देती है संतान ।
ऐसी माँ का देवता, भी करते सम्मान ॥

रक्षा करती पालती, माँ में है हररूप ।
जननी है यह विश्व की, और ज्ञान का कूप ॥

संस्कार लुप्त होते जा रहे है इस पर चिंता जताते हुए कवि कहते हैं -

दें शिक्षा यदि प्रेम से, बच्चों को माँ-बाप ।
तो अच्छे संस्कार की, पड़ती उन पर छाप ॥

कवि हिन्दी के उत्थान की बात भी करते हैं । अंग्रेजी के बढ़ते कदम से हमारी हिन्दी की स्थिति ठीक नहीं है । वह आज भी राष्ट्रभाषा नहीं बन पाई है । जो भी कारण हो किंतु हिन्दी मधुर, सरल, करोड़ों लोगों का कंठहार है कवि के शब्दों में देखिए-

अंग्रेजी के सामने, हिंदी है लाचार ।
जरा मरण के बीच में, ज्यों रोगी बेजार ।

हिन्दी भाषा है सरल, है सटीक व्यवहार ।
जैसा लिखते है 'विजय', वैसा ही उच्चार ॥

संग्रह में बचपन, मेले, सावन, नदी, हरियाली परक दोहे भी महत्वपूर्ण हैं। अंत में इतना अवश्य कहुँगा कि ''**विजय सतसई**''ने हिंदी सतसई की विकासयात्रा को आगे बढ़ाने का श्लाघ्य प्रयास किया है । मैं कवि को बहुत बहुत बधाई देता हूँ।

- डॉ. धीरज वणकर
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
जी.एल.एस. कॉलेज फोर गर्ल्स, अहमदाबाद
मानव संसाधन विकास मंत्रालय से पुरस्कृत लेखक

सर्वश्रेष्ठ दोहों का संकलन

– डॉ. विवेक मणि त्रिपाठी

''अपारे काव्य संसारे कवि एवं प्रजापति'' इस आप्त वचन के अनुसार कवि काव्यरूपी संसार का प्रजापति अर्थात स्त्रष्टा होता है। कवि निर्मित काव्य संसार में सहृदय जन काव्यगत चारुता एवं रसात्मक संवेदनाओं से आह्लादित होते रहते हैं, कारण कि उस सृजनात्मक सृष्टि का स्रष्टा स्वयं ही रसमय है। रस के वशीभूत होकर ही वह सृष्टि की सरंचना में संलग्न हुआ है, फलतः रसमय स्रष्टा के समान ही कवि रूपी प्रजापति की संरचना भी सर्वदा रस से परिपूर्ण रहती है, इसलिए रस को काव्य की आत्मा कहा गया है – ''रसात्मकं वाक्यं काव्यं।''

''कु'' धातु में अच् (इ) प्रत्यय जोड़कर कवि शब्द की व्युत्पति बतलाई गयी है। यहाँ ''कु'' शब्द का अर्थ व्याप्ति एवं आकाश अर्थात सर्वज्ञता से है। अतः कवि सर्वज्ञ है, द्रष्टा है। श्रुति कहती है — कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः। परिभूः अर्थात जो अपनी अनुभूति के लिए किसी अन्य का ऋणी न हो। वैदिक साहित्य में कवि,द्रष्टा एवं ऋषि समानार्थक है। वेदों के प्रकाशक ब्रह्मा को आदि कवि कहा गया है। लौकिक साहित्य में विशिष्ट रमणीय शैली में काव्य की रचना करने वालों के लिए कवि शब्द प्रयुक्त किया जाता है।''

मानसिक आधार पर अवलंबित किसी भी तत्त्व का यथावत लक्षण प्रस्तुत करना कितना दुष्कर है, यह उन भारतीय ब्रह्म चिंतकों के नेति नेति (न इति) प्रक्रिया से स्पष्ट है, जो की ब्रह्म का लक्षण प्रस्तुत करते — करते, अंत में श्रांत होकर उक्त प्रक्रिया का आश्रय ले बैठे हैं। काव्य के विषय में काव्य शास्त्री श्रांत तो नहीं हुए हैं, तथापि काव्य शब्द का ऐसा सर्वमान्य, सर्वगुणसंपन्न लक्षण प्रस्तुत नहीं कर सके हैं,जिसपर कि सभी सहमत हों। सामान्यतः कवि की लोकोक्तर आह्लादकारी, रमणीय एवं चमत्कृत पदावली काव्य के अभिधान से अविहित की जाती है। ''कवनीयं काव्यं'' से भी इसी अर्थ की संपुष्टि होती है।

काव्य ऐसे ही मनीषियों की सृष्टि है जो सम्पूर्ण एवं सर्वज्ञ हों। कवि के लिए ''नवनवोन्मेषशालिनी'' प्रतिभा एवं वर्णन निपुणता अनिवार्य धर्म है, तथापि यह वर्णन निपुणता असाधारण कोटि की होनी चाहिए, इसलिए कवि – कर्म को काव्य संसार कहा गया है और कवि को इस काव्य संसार का प्रजापति अर्थात् स्रष्टा कहा गया है।

''साधु शब्दार्थ सन्दर्भ गुणालंकार भूषितम् ।
स्फुटरीति रसोपेतं काव्यं कुर्वीत कीर्तये ।।''

अर्थात श्रेष्ठ शब्दार्थ गुण एवं अलंकारों से सुसज्जित रीति एवं रस से युक्त रचना काव्य है जो कवि की कीर्ति करने वाला होता है।

काव्य के दो भेद बताये गए हैं दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य, श्रव्य काव्य के भी दो भेद बताये गए हैं प्रबंध काव्य तथा मुक्तक काव्य, विजय तिवारी जी द्वारा रचित यह सतसई मुक्तक काव्य में लिखा गया है। विजय तिवारी जी अपनी सहज, सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, सुकोमल एवं भाव प्रवीण सतसई पाठकों के मनोमस्तिष्क सहित हृदय तंत्रिका को भी झकझोरती रहती है। इनके अथक प्रयास से संकलित इस सतसई रूपी सरिता से प्रवाहित विविध भाव – सरणियों से निःसरित भावतरंगिणीयां हृदय को बलात आकर्षित करने में भी सर्वथा समर्थ है। मुझे आशा ही नहीं वरन पूर्ण विश्वास है कि कवि की यह कृति निश्चित रूप से उनकी कीर्ति में वृद्धि करेगा तथा पाठकवृन्द के हृदय को आह्लादित करते हुए उन्हें मानवता,राष्ट्रीयता, सनातन धर्म के मार्ग पर चलने को प्रेरित करेगा।''

– डॉ. विवेक मणि त्रिपाठी

एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी)
क्वान्तोंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, चीन
वैशाख कृष्ण दशमी, विक्रम संवत 2081

हृदय उदगार

हिन्दी साहित्य का इतिहास इस विश्व का सर्वश्रेष्ठ साहित्य इतिहास है। यह कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं है। भारतीय संस्कृति और परम्परा के अवशेष ईसा पूर्व से हैं। हजारों वर्षों से यह सर्वश्रेष्ठ संस्कृति के रूप में विद्यमान है। इस भारतीय संस्कृति में श्रेष्ठ, स्तरीय और विपुल मात्रा में साहित्य उपलब्ध है। हिन्दी के अथाह, अतुलनीय और अद्वितीय साहित्य को समग्रता में सुचारू रूप से समझने के लिए इसे तीन काल खण्डों में विभक्त किया गया – आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल। इनमें भी कयी और खण्ड किये गये हैं जैसे – भक्ति काल, रीतिकाल आदि। हिन्दी साहित्य में काव्य विधा प्रचूर मात्रा में है। सर्वप्रथम काव्य रचना मुक्तक शैली में ही प्रारम्भ हुई। प्रबंध रचना तो उसका परिष्कृत रूप है। वेद मुक्तक काव्य हैं। प्राकृत में मुक्तक काव्य के दो रूप हैं। एक है संख्या परक और दूसरा स्फूट पद्य।

काव्य में लगभग हजार वर्ष पुराना छन्द दोहा छन्द है। अनुभूति की सटीक और प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति का संवाहक दोहा है। साहित्य के कविता क्रम की सबसे लघु विधा है दोहा। यह नाविक के तीर सा है। सप्तशती के बीज मंत्र सा है, और उड़ता हुआ शब्द स्फुलिंग है जो छूटते ही अग्नि बनकर प्रथ्वी से आकाश को जोड़ सकता है। गागर में सागर भरने वाला यह अति लघु छन्द दोहा अपने पैनेपन और भावप्रवण अर्थ गाम्भीर्य के लिए हमेशा चुनौती बना रहा है। जिस प्रकार भगवान विष्णु के वामन अवतार ने अपने तीन चरणों में इस ब्रह्माण्ड को नाप लिया था। उसी प्रकार साहित्य के इस वामनावतार दोहा ने अपने चार चरणों में समस्त ब्रह्माण्ड को उसकी भाव–भंगिमा को नाप लिया है। इसके शब्द रूपी शरीर में लय और संगीत के प्राण इसे जीवन शक्ति प्रदान करते हैं। इसकी चेतना की नाभि में रस का पीयूष –घट रहता है। कल्पना इसकी सहचरी है, मार्मिक भावाभिव्यंजना इसकी सहधर्मिणी है। यह ऐसी काव्य विधा है जो अपनी छोटी सी भुजाओं में आकाश तो क्या समस्त ब्रह्माण्ड को बांधने की क्षमता रखता है। माता शारदे की वीणा से निष्पादित है यह छन्द। कयी दोहे तो ऐसे हैं जो अविस्मरणीय सूक्ति बन गये हैं।

भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन कवियों ने इसके रूप को इतना अधिक संवारा, सजाया और महिमा मंडित किया है कि इसे साहित्य से पृथक करने पर साहित्य की छवि श्री हीन हो जाएगी। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में इसे प्रतिष्ठापित कर इसे श्रेष्ठ, स्तरीय आसन पर समादृत कर दिया है। साथ ही कबीरदास, रहीम, अमीर खुसरो, जायसी, मतिराम, नानकदेव, वृन्द, मलूकदास, दादूदयाल एवं बिहारीलाल आदि कालजयी कवियों ने भी इस छन्द की ऐसी श्रेष्ठ वंदना की है कि यह छन्द अब सर्वश्रेष्ठ और अमरत्व को प्राप्त हो गया है। इतिहास साक्षी है, दोहा जैसे छोटे से छन्द के द्वारा जब एक महाकवि ने अपने मित्र सम्राट की तनी हुई प्रत्यंचा को दूरी मापक यंत्र के रूप में अपने दोहे से दिशा निर्देश दिया था —

चार बांस, चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण।
एतै पै सुल्तान है, मत चूके चौहाण ।।

शब्द सौन्दर्य और अर्थ गाम्भीर्य का जैसा अद्‌भुत सामंजस्य दोहा छन्द में देखने को मिलता है, वैसा अन्यत्र नहीं है। यहाँ एक-एक शब्द तौल-माप कर रखा जाता है। सेर-छटाँक या तोला-मासा का फर्क तो दूर की बात है, रत्तीभर का फर्क भी इसके रूप-रंग को प्रभावित करता है। हालांकि समय के साथ -साथ इसमें भी बदलाव आया है। लेकिन छन्द विधान में नहीं सिर्फ अभिव्यक्ति में, विषय में। जिस प्रकार उर्दू से हिन्दी में आने पर ग़ज़लों के विषय क्षेत्र का विस्तार हुआ है। उसी प्रकार आधुनिक साहित्यिक हिन्दी के दोहों में भी प्राचीन और मध्यकालीन अपभ्रंश तथा ब्रजभाषा के दोहों की अपेक्षा विषय विस्तार हो गया है। विगत दशकों में दोहे की मंदगति में प्रगति हुई है। सृजन हेतु नये-नये संदर्भों, प्रतीकों, पारदर्शी बिम्बों, आँचलिक शब्दों एवं अभिव्यक्ति के नये प्रतिमानों का समावेश हो गया है। जिसे नज़र अंदाज़ नहीं किया जा सकता है। इस छन्द के शिल्प में अत्यंत सहजता से समावेश होते हुए परम्परागत विषयों को भी नये आयाम में देखा और परखा तथा नये रंगों को उकेरा भी है।

दोहा हिन्दी काव्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। हिन्दी काव्य की अनेक विधाओं में दोहा विधा ही एक ऐसी विधा है जो बहुत ही कम शब्दों में एक बड़ा वितान रचने की क्षमता रखती है। चार चरणों में बंधीं दो पँक्तियों की यह छोटी सी रचना अपने अंदर विस्तृत अर्थों को समेटते हुए पाठक के समक्ष जब एक पूरा दृश्य उपस्थित कर देती है तो पाठक अभिभूत होकर वाह -वाह कह उठता है। दोहा अपने लय, शिल्प, शब्द -विन्यास और अर्थ गाम्भीर्य के लिए जाने जाते हैं। दोहा ही एक ऐसी विधा है जो सबकी जुबाँ पर आज भी अठखेलियाँ कर रहा है। दोहा का अपना

एक स्वतंत्र और समृद्ध इतिहास रहा है। दोहा आदि कवि से पोषित होकर अपने स्वर्णिम दौर से गुजरते हुए आज के आधुनिक काल में भी भरपूर लिखे और पढ़े जा रहे हैं। यही वजह है कि दोहे की लोकप्रियता आज भी शिखर पर है।

हिन्दी साहित्य में दोहे का विशेष स्थान है। सतसई परम्परा का प्रारंभ गाथा सप्तसती से माना जाता है। इससे प्रभावित होकर संस्कृत कवियों ने अमरुक शतक और शतकत्रय की रचना की। हिन्दी में कृपाराम की हित तरंगिणी को सतसई परम्परा का प्रथम ग्रंथ माना जाता है। मुबारक के अलक शतक और तिलक शतक भी इसी परम्परा में आते हैं। बलभद्र मिश्र आर्या सप्तसती के अनुवादक हैं। यह बात सर्वमान्य और निर्विवाद है कि **बिहारी सतसई** से हिन्दी सतसई परक ग्रंथ शैली का प्रादूर्भाव हुआ। कृपाराम, मतिराम, रसनिधि, विक्रम शाह, राम सिंह, सूर्यमल, हरिऔध, दुलारे लाल और वियोगी हरि आदि की सतसईयाँ और दोहावलियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी साहित्य के इस अत्यधिक लोकप्रिय छन्द दोहा से जब पूरा विश्व प्रभावित हो और उसके आकर्षण के मोहपाश में बंधा हुआ हो तो भला मैं कैसे इससे बच सकता था। मैं भी इससे अलिप्त न रह सका। मैं तो वैसे भी मूलतः कवि हूँ और मेरा मूल स्वर ग़ज़ल का है। साथ ही साथ गीत, छन्द बद्ध कविता, सवैया, कवित्त आदि छन्दों में भी लिखता रहा हूँ। ग़ज़ल में प्रत्येक दो पँक्तियों से बने एक पूर्ण दृश्य को शेर कहते हैं। प्रथम दो पँक्तियां मतला फिर शेर और अंत में मकता। ग़ज़ल में शेर होते हैं और मेरे मतानुसार हिन्दी में दोहा सवा शेर है। ग़ज़ल के शेर की दोनों पँक्तियों में तुकान्त (क़ाफ़िया) नहीं होता है। इसलिए आनन्द अधूरा सा लगता है। लेकिन दोहे की दोनों पँक्तियों में तुकान्त समान होने से इसका आनन्द दुगना हो जाता है। इस रसानुभूति और दुगने आनन्द को प्राप्त करने की लालसा ने मुझसे सतसई की रचना करवाई है। विजय सतसई से पूर्व इस पश्चिमांचल से परमादरणीय श्री डॉ. किशोर काबरा की किशोर सतसई श्री मुंशीलाल मिश्र की उर्मिल सतसई डॉ.जयसिंह व्यथित की अनुभूति सतसई श्री अश्विनी कुमार पाण्डेय की खूंटी लटकी धूप और श्री आत्मप्रकाश कुमार की अनुभव सतसई तथा आत्म हजारा तथा पारुकान्त देसाई की देसाई सतसई का अध्ययन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। इनके अलावा अन्य कोई सतसई मेरे ध्यान में नहीं है।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि विजय सतसई का प्रत्येक दोहा परमादरणीय डॉ. किशोर काबरा जी के द्वारा संशोधित है। मेरे 912 दोहों में से उन्होंने काट छाँट करते हुए संशोधित करते हुए अन्ततः 772 दोहों पर अपनी सम्मति दी। मेरी पाण्डुलिपि पर जगह –जगह पर उनके द्वारा किए गए संशोधन, उनके अक्षर, उनकी लिखावट मेरी

सबसे बड़ी बहुमूल्य निधि हैं। मैं जब भी उस लिखावट को देखता हूँ तो काबरा जी को अपने सम्मुख पाता हूँ। यह मेरा सौभाग्य है कि उनके सत्संग का मुझे अवसर मिला।

विजय सतसई में देश भक्ति, ईश्वर भक्ति, राष्ट्रीय चेतना, दर्शन, समाज, उत्सर्जना, भावना, भावुकता, साहस, मनुष्योचित व्यवहार, विरोधाभास, मानवता, पूजा, प्रेम, संयोग - शृंगार, वियोग - शृंगार, राजनीति और सामाजिक विसंगतियाँ, धर्म, घर-परिवार और रिश्तों के विद्रूप चेहरे आदि को अत्यंत सटीक और मार्मिकता से उकेरा है। इसके अलावा तमाम मनोभावों और प्रकृति के रंग इतस्तत**:** बिखरे हुए हैं। सतसई परम्परा के समस्त कवियों को सादर नमन करते हुए उसमें मैं ने अपनी इस विजय सतसई को जोड़ने का विनम्र प्रयास किया है।

मैं अपने तमाम साहित्यिक मित्रों, पाठकों और श्रोताओं का हृदय से आभार ज्ञापित करता हूँ। क्योंकि सभी के लगातार उत्साह वर्धन से, प्रोत्साहन से यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी है। मेरी सहधर्मचारिणी, मेरी जीवनसंगिनी, मेरी पत्नि कुसुम तिवारी का भी मैं विशेष आभारी हूँ।

इस पुस्तक पर अपने आशीर्वचन एवं शुभकामनाएँ देने वाले डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी (कोलकाता), सुषमा मल्होत्रा (न्यूयॉर्क), डॉ. अनु मेहता (आणंद), डॉ. पूनम झा (नेपाल), डॉ. धीरज वणकर (अहमदाबाद), एवं डॉ. विवेक मणि त्रिपाठी (चीन) का मैं हृदयतल से ऋणी हूँ, आभारी हूँ।

अब यह ग्रंथ आप सभी के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी की यह पंक्ति याद आ रही है कि - जो दूसरे की रचना को सुनकर या पढ़कर प्रसन्न होते हैं ऐसे श्रेष्ठ पुरुष संसार में कम हैं-

जे पर भनिति सुनत हरषाहीं। ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप वर पुरुष हैं और आपको **विजय सतसई** पढ़कर अवश्य प्रसन्नता होगी।

परशुराम जयन्ती, **- विजय तिवारी**
अक्षय तृतीया, विक्रम संवत-2081
मई - 10-2024
अहमदाबाद

विजय सतसई

मोदक इनको प्रिय लगें, इनके पिता महेश ।
सर्वप्रथम पूजो इन्हें, इनका नाम गणेश ।।१।।

नाम स्मरण से पूर्ण सब, हो जाएँगे काज ।
ले इनका आशीष ये, वक्रतुण्ड महाराज ।।२।।

माता वीणावादिनी, चरणों में है शीश ।
तेरे गुण गाऊँ सदा, दे मुझको आशीष ।।३।।

हंस वाहिनी शारदे, लिये हाथ में ग्रन्थ ।
दे मुझको आशीष ये, तजूँ न मैं सत्पंथ ।।४।।

कुल देवी का ध्यानकर, महिमा का कर गान ।
तू पाएगा विश्व में, मान और सम्मान ।।५।।

हे माता, मैं चाहता, बस चरणों की धूल ।
दुनिया में है बस 'विजय', यही ज्ञान का मूल ।।६।।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश का, ज़रा देख परिवार ।
माँ के हाथों चल रही, दुनिया की सरकार ।।७।।

शक्ति, भक्ति, औ मुक्ति का, दो मुझको वरदान।
बस इतनी है प्रार्थना, सुनिए श्री हनुमान ।।८।।

राम नाम जप छोड़कर, खुद को ही पहचान ।
तेरे भीतर हैं बसे, त्रिभुवनपति भगवान ॥९॥

रामकृष्ण का देश यह, संस्कृतियों का मूल ।
मोहक इसका रूप है, पावन इसकी धूल ॥१०॥

दीनों का सज्जन कभी, नहीं छोड़ते साथ ।
सदा दूज के चन्द्र को, शिवजी धरते माथ ॥११॥

चरणों में माँ शारदे, पड़ा हुआ यह दास ।
कविता का वर दे इसे, बस इतनी है आस ॥१२॥

चरणों में ही आपके, झुका रहा हूँ शीश ।
कृपा दृष्टि रखना प्रभो, देकर के आशीष ॥१३॥

देखू मैं छवि आपकी, मन बगिया खिल जाय ।
बिन देखे प्रभु आपको, मन मेरा अकुलाय ॥१४॥

अब तो प्रभु इस दास पर, कृपा कीजिए आप ।
मिट जाए मन से सभी, पाप और संताप ॥१५॥

स्वार्थ कपट छल से सदा, रहना कोसों दूर ।
होगी तेरी प्रार्थना, तभी वहाँ मंजूर ॥१६॥

सर्वोत्तम सुख चाहिए, सोच रहे हैं आप ।
तो भगवन के नाम का, मन से कर ले जाप ॥१७॥

तेरी महिमा विश्व में, छाई अपरम्पार ।
अद्‌भुत, अतुल, अथाह है, जैसे पारावार ॥१८॥

आभा ऐसी आपकी, जग में हुआ प्रकाश ।
खग मृग सब हर्षित हुए, उल्लू हुए निराश ॥१९॥

दुःख भी सुख के साथ ही, देना कृपानिधान ।
जिससे जीवन की मुझे, हो पूरी पहचान ॥२०॥

आप चाहते हैं अगर, दर्शन दें श्रीनाथ ।
सदा समर्पित कीजिए, सब कुछ मन के साथ ॥२१॥

इन आँखों में डूब कर, सहज मिले भगवान ।
आँसू तेरा 'विजय' पर, बहुत बड़ा अहसान ॥२२॥

देवी की आराधना, यह नवली नवरात ।
मन प्रसन्न करता सदा, यह गरवी गुजरात ॥२३॥

तपो भूमि पावन बहुत, हर-हर बम-बम नाद ।
पर्वत यह गिरनार है, छंट जाये अवसाद ॥२४॥

यदि करता है काम तू, देकर पूरा ध्यान ।
इष्ट देव से पायगा, मनचाहा वरदान ।।२५।।

होता है शिवलिंग में, मुझको विश्वप्रतीत।
उनका क्या वर्णन करूँ जो हैं शब्दातीत ।।२६।।

जन्म भूमि है राम की, अवधपुरी अभिराम ।
इसकी मिट्टी को सदा, करता विश्व प्रणाम ।।२७।।

बस इतनी है प्रार्थना, बस इतनी अरदास ।
जीवन के इस बाग़ में, रहे सदा मधुमास ।।२८।।

धीरज धर थोड़ा अभी, क्यों होता बेचैन ।
माता के दरबार में, सुने जायंगे बैन ।।२९।।

निश्चित ही फल पायगा, भली करेंगे राम ।
दत्त चित्त हो काम कर, शुभ होगा परिणाम ।।३०।।

आज नहीं कुछ सूझता, कैसा है ये वक्त ।
हे प्रभु, सम्मुख आपके, नत मस्तक है भक्त ।।३१।।

बिना आपके कौन दे, मुझे दया का दान ।
चरणों में प्रभु आपके, पड़ा हुआ नादान ।।३२।।

ये विपदा ये आपदा, ईश्वर का अवदान ।
इनसे क्यों घबरा रहा, हे मूरख इन्सान ।।३३।।

सुख में इतराऊँ नहीं, दुःख में नहीं निराश ।
समरस रखना हे प्रभो, बस इतनी है आस ।।३४।।

मत मंदिर-मस्जिद भटक, मत पढ़ वेद-कुरान।
मन के भीतर ढूँढ़ तू, पायेगा भगवान ।।३५।।

मानस लिख यश पा गए, कविवर तुलसीदास।
बन पाऊँ शायद कभी, उन चरणों का दास ।।३६।।

यश अपयश विधि हाथ है, तो क्यों करता सोच।
श्रम करने में तू कभी, मत करना संकोच ।।३७।।

मालिक तो बस है वही, हाथ उसी के डोर ।
उधर जा रहे हम सभी, ले जाये जिस ओर ।।३८।।

मन से कर आराधना, बैठे गंगा तीर ।
तुझसे मिलने आयंगे, एक दिवस रघुवीर ।।३९।।

शुद्ध ह्रदय से याद कर, हर हर की लय तान।
निश्चय तू पा जायगा, महादेव वरदान ।।४०।।

कठिन तपस्या देख कर, दिया मुझे वरदान ।
मुर्दे में भी डाल दी, महादेव ने जान ॥४१॥

बस इतनी है प्रार्थना, हे मेरे भगवान ।
मानवता मुझमें रहे, बना रहूँ इन्सान ॥४२॥

हे ईश्वर, इस विश्व के, कर दे सब दुःख दूर ।
या फिर इतनी शक्ति दे, मदद करूँ भरपूर ॥४३॥

याचक मेरे द्वार से, लौटे नहीं निराश ।
मुझमें हो सामर्थ्य ये, बस इतनी अरदास ॥४४॥

तेरे दर्शन के लिये, मन रहता बेचैन ।
मन तो भरता ही नहीं, मैं देखूँ दिन रैन ॥४५॥

सब कुछ अर्पण कर दिया, चरणों में भगवान ।
हाथों में है आपके, मान और सम्मान ॥४६॥

प्रेमी बन्धु और सखा, तू ही है भरतार ।
गलत राह पर मैं गया, तो तू जिम्मेदार ॥४७॥

मुखड़ा तेरा देख कर, मेरी होती भोर ।
ऐसे ही इस प्राण की, खींच लीजिए डोर ॥४८॥

'विजय सतसई' आपके, श्रीचरणो में नाथ ।
मुझको अब बस चाहिए, सदा आपका साथ ॥४९॥

बात न बैठे बुद्धि में, करे न प्रतिभा काम ।
शांत चित्त करके 'विजय', भज ईश्वर का नाम ॥५०॥

हे भगवन दे दीजिये, बस इतना वरदान ।
दुःख दुनिया के हर सके, रचे 'विजय' वह गान ॥५१॥

देना हो तो दीजिये, सुख ऐसा करतार ।
जीवन भर होती रहे, खुशियों की बौछार ॥५२॥

पनप रहे अपराध ये, फूल-फल रहे पाप ।
मौन साध क्यों रह गए, विश्व नियंता आप ॥५३॥

पा सकते कुछ भी नहीं, जो करते फरियाद ।
श्रम से ही फल पायगा, कर ईश्वर को याद ॥५४॥

भीतर बाहर है वही, तू उसको ले जान ।
प्राणवायु को साध ले, ईश्वर को पहचान ॥५५॥

तुलसी, मीरा, जायसी, सूरदास, रसखान ।
इनके जैसा लिख सकूँ, ऐसा चाहूँ ज्ञान ॥५६॥

गीत-ग़ज़ल से विश्व में, मुझे मिले पहचान ।
हे भगवन दे दीजिये, मुझको यह वरदान ।।५७।।

कुपित नहीं होंगे प्रभो, नहीं चढ़ाया भोग ।
कपड़ा भोजन दे उन्हें, भूखे नंगे लोग ।।५८।।

सुख आये तो मानिये, ईश्वर का आभार ।
दुःख में और बढ़ा सदा, पुण्य कर्म व्यवहार ।।५९।।

श्री चरणों में आपके, भगवन है यह ग्रन्थ ।
बाँह पकड़ कर ले चलो, मुझे प्रेम के पंथ ।।६०।।

ममता करुणा स्नेह से, स्वाभिमान से युक्त ।
जीवन ऐसा दीजिये, हो घमंड से मुक्त ।।६१।।

इच्छा थी यह आपकी, और यही आदेश ।
मेरे द्वारा आपने, दिया जगत संदेश ।।६२।।

हमने आविष्कृत किया, पहले पुष्पक यान ।
दुनिया में उड़ने लगे, इसके बाद विमान ।।६३।।

क्यों विदेश इतरा रहे, पा थोड़ा विज्ञान ।
बात यही सब कह चुके, कब से वेद पुरान ।।६४।।

विविध जाति औ' धर्म हैं, भारत की पहचान ।
है अनेकता में छिपी, इसकी शक्ति महान ।।६५।।

मान रहा अब विश्व भी, है बस यही महान ।
श्रेष्ठ सनातन संस्कृति, भारत की पहचान ।।६६।।

टुकड़ा नहीं ज़मीन का, मेरा भारत देश ।
मानवता महके यहाँ, जीवित है परिवेश ।।६७।।

भारत की संस्कृति सदा, जग में रही महान ।
सागर चरण पखारता, हिमगिर करे वितान ।।६८।।

बहुत बड़ा विज्ञान है, औषधि आयुर्वेद ।
ज्ञान नहीं इसका हमें, यही बड़ा है खेद ।।६९।।

आँख मूँद कर दौड़ते, हम पश्चिम की ओर ।
भूल गये हम स्वयं को, यह संस्कृति सिरमौर ।।७०।।

दोहे लिख कर हो गए, जो रहीम मशहूर ।
वे देते थे दान भी, दुखियों को भरपूर ।।७१।।

गीता लिखकर व्यास ने, दिया विश्व को ज्ञान ।
धर्म और कर्त्तव्य से, फिर भी सब अनजान ।।७२।।

दुनिया को हमने दिया, आयुर्वेद महान ।
इसके जैसा विश्व में, नहीं कहीं विज्ञान ॥७३॥

है भूगोल-खगोल का, जितना जग को ज्ञान ।
उससे ज्यादा जानते, हम उनका विज्ञान ॥७४॥

ऋषियों का अनुगमन कर, पाया हमने ज्ञान ।
पुण्य धरा यह विश्व में, सबसे अधिक महान ॥७५॥

निश्चित जाना है हमें, सभी यहाँ पर छोड़ ।
छोड़ो माया मोह को, प्रभु से नाता जोड़ ॥७६॥

शून्य दशमलव है 'विजय', भारत की ही देन ।
दुहराती दुनिया वही, ऋषि मुनियों के बैन ॥७७॥

मरते-मरते भी किया, दानवीर ने दान ।
और न कोई हो सका, जैसा कर्ण महान ॥७८॥

भगवद् गीता ने दिया, हमें कर्म सिद्धान्त ।
छिपा हुआ इस ग्रंथ में, पूरा ही वेदान्त ॥७९॥

बात यही सब कह रहे, गीता वेद पुरान ।
मानवता ही है सदा, सब धर्मों की जान ॥८०॥

दुनिया में मशहूर है, भारत देश महान ।
अद्भुत अतुल अथाह है, ज्ञान और विज्ञान ॥८१॥

भाषा, संस्कृति कर्म से, होती है पहचान ।
दुनिया के मानक यही, कैसा है इन्सान ॥८२॥

धोखा देते देश को, वे सब हैं गद्दार ।
उनको मिलनी चाहिए, जन जन से धिक्कार ॥८३॥

हैं सुभाष, ठाकुर, रविन्द्र, बंकिमचन्द्र से लाल ।
मीठी है भाषा बहुत, ये पश्चिम बंगाल ॥८४॥

इस मिट्टी में हैं छिपे, वीरों के बलिदान ।
नमन करो पहले इसे, यह है राजस्थान ॥८५॥

स्वामी रक्षा के लिए, चेतक ने दी जान ।
अन्त समय तक वीर ने, रण में रक्खा मान ॥८६॥

देश धर्म के वास्ते, सब कुछ कर दे दान ।
ऐसे भामाशाह थे, इस मिट्टी की शान ॥८७॥

वन वन भटके हैं मगर, कभी न हारी शान ।
अपने वीर प्रताप पर, हमको है अभिमान ॥८८॥

वीरों की है भूमि यह, है अद्भुत इतिहास ।
उत्सव में भी रंग भरे, जन-जन में उल्लास ॥८९॥

शीश उठाये है खड़ा, वीरों का कर गान ।
है प्रतीक बलिदान का, यह चित्तौड़ महान ॥९०॥

होंगे हम सब तब सुखी, जब हो सुखी किसान ।
भरे रहें धन-धान्य से, खेत और खलिहान ॥९१॥

सागर पाँव पखारता, हिमगिरि-सी है आन ।
सीना ताने है खड़ा, मेरा हिन्दुस्तान ॥९२॥

कभी अलग होगा नहीं, भारत से कश्मीर ।
जो भी दुश्मन आयगा, सेना देगी चीर ॥९३॥

वीर सुता यह भूमि है, हैं वीरों के झुंड ।
मुंड कटा पर युद्ध में, लड़े यहाँ हैं रुंड ॥९४॥

सैनिक मेरे देश के, रहते हैं बस धीर ।
पर दुश्मन गद्दार को, वे देते हैं चीर ॥९५॥

वीरों की भी वीर थी, लक्ष्मीबाई नाम ।
सम्मुख रण में जो गया, समझो काम तमाम ॥९६॥

सुख-सुविधा इच्छा सभी, मात-पिता घरबार ।
छोड़ सभी कुछ देश पर, दिया स्वयं को वार ॥९७॥

जान हथेली पर लिए, सरहद पर तैयार ।
ऐसे वीरों को करें, नमन हजारों बार ॥९८॥

अलग-अलग भाषा भले, अलग-अलग पहचान ।
किन्तु राष्ट्र सर्वोपरी, हर सैनिक के भाव ॥९९॥

खूब ध्यान से देख तू, भारत की तस्वीर ।
सिंह सवारी माँ किये, लिये हाथ शमशीर ॥१००॥

थर-थर काँपे विश्व यह, डरते हैं हैवान ।
सम्मुख हो जब युद्ध में, सेना हिन्दुस्तान ॥१०१॥

सेना का हर वीर है, ज्यों दहाड़ता शेर ।
सम्मुख आया हो गया, दुश्मन पल में ढेर ॥१०२॥

कैसी भी हो आपदा, सेना करे बचाव ।
प्रेमभाव सबके लिए, कोई नहीं दुराव ॥१०३॥

मात्र युद्ध में ही नहीं, चला रहे शमशीर ।
पारंगत हर क्षेत्र में, सेना के ये वीर ॥१०४॥

लिये तिरंगा हाथ में, चलते सीना तान ।
आसमान को छू रहा, ये सेना की शान ॥१०५॥

रक्षा सेवा प्रेम ही, हैं जिनके आधार ।
वे सहायता हेतु सब, हर दम हैं तैयार ॥१०६॥

मोह दिखावा छल कपट, इन सबसे हैं दूर ।
कूट-कूट कर है भरा, राष्ट्र प्रेम भरपूर ॥१०७॥

बजा नगाड़ा युद्ध का, चलने को तैयार ।
फिर मुरली की तान भी, हो जाती बेकार ॥१०८॥

सेना के हर वीर की, अलग निराली शान ।
इसीलिए तो अन्त तक, कहते उसे जवान ॥१०९॥

हँसकर सहना सीख ले, अपनों से अपमान ।
तभी मिलेगा एक दिन, तुझको केवल ज्ञान ॥११०॥

कहलाएगा देश का, तब आदर्श समाज ।
मसज़िद में हो प्रार्थना, मंदिर पढ़े नमाज ॥१११॥

आज न्याय मिटने लगा, और फल रहा पाप ।
फिर भी मन की आँख को, मूँद सो रहे आप ॥११२॥

बड़ा सरल है ढूँढ़ना, दुनिया में भगवान ।
लेकिन मिलना है कठिन, यहाँ एक इन्सान ॥११३॥

निश्चित ही मिल जायगी, तुझको अपनी राह ।
सह लेना हर पीर को, कभी न करना आह ॥११४॥

कड़ी धूप में वृक्ष जो, देता हमको छाँव ।
उसके भी काँटे कभी, चुभ जाते हैं पाँव ॥११५॥

हिन्दू-मुसलिम-पारसी, खून सभी का लाल ।
रचने वाले ने रचा, तू क्यों करे मलाल ॥११६॥

व्यर्थ नहीं है कुछ यहाँ, सबकी क़ीमत जान ।
वरना तू मिट जायगा, समय बड़ा बलवान ॥११७॥

बड़े पेड़ की छाँव में, नहीं पनपता पौध ।
यदि है फलना फूलना, सही जगह तू शोध ॥११८॥

जन्म-मृत्यु दो छोर हैं, जीवन है इक डोर ।
उस पर सब कुछ भूलकर, नाच रहा मनमोर ॥११९॥

क्षमा शील बनना मगर, बनो नहीं कमजोर ।
कमजोरों को हार ही, मिलती है सबठौर ॥१२०॥

दृढ़ता अच्छी है मगर, हठ को छोड़ा जाय ।
प्रेमी कहलाना भला, पागल क्यों कहलाय ॥१२१॥

सबसे उत्तम मितव्ययी, मध्यम है कंजूस ।
किन्तु अधम वह धनिक जो, रहे सदा मनहूस ॥१२२॥

सब अपने में मस्त हैं, भूल गए व्यवहार ।
कौन जला, कितने मरे, पढ़ लेंगे अख़बार ॥१२३॥

आसतीन में पालिये, भले विषैले साँप ।
काटेगा कब कौन यह, ले पहले से भाँप ॥१२४॥

कदम-कदम पर आपके, आएँ यदि व्यवधान।
तो समझो पाना हुआ, अब मंजिल आसान ॥१२५॥

अच्छे कर्मों का मिले, अच्छा ही परिणाम ।
तो दुनिया के लोग सब, तुमको करें प्रणाम ॥१२६॥

आप नहीं पढ़ पायंगे, उसके अक्षर खास ।
जो क़िताब हो आँख के, कुछ ज्यादा ही पास ॥१२७॥

अब कोई भी हादसा, लगता नहीं अजीब ।
क्योंकि ज़िन्दगी आ गई, मेरे बहुत करीब ॥१२८॥

सुखमय जीवन चाहिए, प्रथम ख़ुशामद सीख ।
वरना पढ़कर पोथियाँ, माँगेगा तू भीख ॥१२९॥

काने को काना कहे, तो तू पीटा जाय ।
रोज सुबह फिर क्यों कहे, वक्रतुण्ड महाकाय ॥१३०॥

शेर-सवैया छोड़ कर, घर का कर लो साथ ।
वरना आधे-पौन में, बिक जाओगे नाथ ॥१३१॥

पढ़ने लिखने से सदा, रहना कोसों दूर ।
वरना तू रह जायगा, बनकर के लंगूर ॥१३२॥

फँस जाओगे देखना, माया सर के बीच ।
ऊपर-ऊपर हैं कमल, भीतर केवल कीच ॥१३३॥

कड़वा कड़वा बोलकर, ज़हर दिया है घोल ।
अमृत घट यदि चाहता, तो तू मीठा बोल ॥१३४॥

मौका है मत छोड़ना, सबको मिटा समूल ।
वरना फिर बढ़ जायगे, ये बरसाती शूल ॥१३५॥

यही एक मीठा कुआँ, बचा हुआ है आज ।
इसकी रक्षा हम करें, मानवता के काज ॥१३६॥

हत्या करके एक की, सौ की बचती जान ।
मानवता के वास्ते, ऐसी बातें मान ॥१३७॥

विपदा में आया समझ, करो न मांसाहार ।
काया चाहो स्वस्थ तो, केवल शाकाहार ॥१३८॥

तन-मन-धन यदि स्वच्छ हैं, निश्चय तेरी जीत ।
विपदा कभी न आयगी, मत हो तू भयभीत ॥१३९॥

प्रगति पंथ पर हैं गड़े, बन कर जो भी शूल ।
यदि बढ़ना आगे तुझे, इनको कर निर्मूल ॥१४०॥

सीख 'विजय' तू पेड़ से, रिश्ते का निर्वाह ।
चोट मूल पर यदि लगे, टहनी करती आह ॥१४१॥

दुनिया खुश हो जायगी, मीठा मीठा बोल ।
बोलेगा सच तो 'विजय', खुल जायेगी पोल ॥१४२॥

मानवता के वास्ते, थोड़ा कर ले दान ।
वरना तब पछतायगा, जब निकलेगी जान ॥१४३॥

नीम बहुत कड़वा मगर, गुण उसके बहुमूल्य ।
शक्कर मीठी है बहुत, लेकिन विष के तूल्य ॥१४४॥

ये पश्चिम की संस्कृति, अमरबेल का काम ।
सभी ओर से जकड़ कर, करती काम तमाम ॥१४५॥

उड़ो गगन में खूब तुम, खुश हो गाओ गान ।
किन्तु कहाँ सैयाद है, इसका रक्खो ध्यान ॥१४६॥

देख सके जो स्वयं के, छिपे हुए छल-छंद ।
जीवन में उसको मिले, निश्चित परमानंद ॥१४७॥

बोल तभी जब ध्यान से, कर ले सोच विचार ।
वरना फिर पछतायगा, होगा ना उपचार ॥१४८॥

शंका से हो जायगी, मन में एक दरार ।
पूछो उसको प्रेम से, क्यों करते हो रार ॥१४९॥

ग़ैरों से उम्मीद है, रखें राज़ को राज़ ।
किन्तु पेट में आपके, टिकता नहीं अनाज ॥१५०॥

अपनी त्रुटियों पर अधिक, मत कर तू अफ़सोस ।
यहाँ लोग तो ढूढ़ते, अच्छे में भी दोष ॥१५१॥

मंजिल का ही ध्यान कर, और न कुछ तू सोच ।
ध्येय अगर निश्चित नहीं, हो जायेगा पोच ॥१५२॥

बातों से बनता नहीं, दुनिया में इतिहास ।
करने पड़ते हैं बहुत, काम गज़ब के ख़ास ॥१५३॥

लम्पट बाबा साधु से, कभी न रखना मेल ।
आज नहीं तो कल सही, जायेंगे सब जेल ॥१५४॥

तन-मन चाहें स्वस्थ तो, करलें प्राणायाम ।
इसका सारे जगत में, फैला है आयाम ॥१५५॥

महादेव-सा चाहिये, अगर मान सम्मान ।
सुख वैभव को त्याग दे, कर पहले विषपान ॥१५६॥

अपना आपा छोड़कर, भज ईश्वर का नाम ।
धुल जाएंगे पाप सब, पाएगा विश्राम ॥१५७॥

धन दौलत इस विश्व की, चाहे जितनी जोड़ ।
आख़िर में जाना तुझे, सभी यहीं पर छोड़ ॥१५८॥

शंका कभी न कीजिये, बहुत विकट यह भाव ।
भले एक ही छेद हो, डूब जायगी नाव ॥१५९॥

यहाँ मूरखों की सभा, मत बघार तू ज्ञान ।
देगा यदि उपदेश तो, खो बैठेगा जान ॥१६०॥

बचना है यदि दुष्ट से, भले बोल तू झूठ ।
पाप नहीं कहते इसे, नीति यही है कूट ॥१६१॥

मूरख जब उपदेश दें, तब तू हो जा मौन ।
उसकी चकचक में भला, तुझे सुनेगा कौन ॥१६२॥

अपनों से मत दूर जा, मत करना अपमान ।
वरना तू रह जायगा, दुनिया में अनजान ॥१६३॥

मन की बातें बोल मत, करता जा बस काम ।
काम सफल हो तो समझ, तुझको मिला इनाम ॥१६४॥

आने दे पहले समय, तू रहस्य मत खोल ।
धीरज रख थोड़ा अभी, मौन बहुत अनमोल ॥१६५॥

सहनशीलता सादगी, की मर्यादा जान ।
समझाना यदि व्यर्थ हो, बात नहीं फिर तान ॥१६६॥

जग को मित्र बनाइये, करिये सबसे बात ।
पर सतर्क रहिये सदा, कौन कर रहा घात ॥१६७॥

क्रोध कभी मत कीजिये, ये विनाश का मूल ।
जितनी जल्दी हो सके, इस पर डालो धूल ॥१६८॥

मत करना तू ईर्ष्या, जीवन में ऐ मीत ।
होता इससे बेसुरा, जीवन का संगीत ॥१६९॥

कभी किसी इन्सान पर, मत लादो अहसान ।
वरना दुनिया में 'विजय', घट जायेगा मान ॥१७०॥

बंजर धरती में अगर, बोयेगा तू बीज ।
समय जायगा व्यर्थ ही, मिले न कोई चीज ॥१७१॥

तन की चिंता छोड़ दे, मन को करले साफ ।
वरना कोई भी 'विजय', नहीं करेगा माफ ॥१७२॥

शंका कभी न कीजिए, यह विनाश का मूल ।
कर देगा सम्बन्ध को, बिलकुल ही निर्मूल ॥१७३॥

काम करो जग में भले, रहो दुष्ट से दूर ।
इन दोनों से व्यक्ति में, आ जाता है नूर ॥१७४॥

दीन-दुःखी की ले दुआ, होगा तभी विकास ।
कभी किसी को मत सता, होगा तेरा नाश ॥१७५॥

धन दौलत सब कुछ यहीं, जाना है जब छोड़ ।
तो क्यों तू बेकार में, उन्हें रहा है जोड़ ॥१७६॥

जाना खाली हाथ है, व्यर्थ रहा तू जोड़ ।
अच्छे कर्मों की तरफ़, मुखड़ा अपना मोड़ ॥१७७॥

बड़े बोल मत बोल तू, करता जा बस काम ।
हो जायेगा एक दिन, निश्चित तेरा नाम ॥१७८॥

ज्ञानी से ले ज्ञान तू, सदा झुका कर शीश ।
वे ही देंगे सुयश का, तुझे अमर आशीष ॥१७९॥

कैसे इच्छा मात्र से, फल पाएँगे आप ।
श्रम करना पड़ता बहुत, सहना पड़ता ताप ॥१८०॥

तपते सूरज से कभी, मत कर सीना तान ।
उषा काल में तू 'विजय', आँख मिला धर ध्यान ॥१८१॥

करता रह तू साधना, होना नहीं अधीर ।
काम-क्रोध की एक दिन, टूटेगी जंजीर ॥१८२॥

अक्षर ब्रह्म स्वरूप हैं, इनकी कीमत जान ।
और सत्य पर है टिका, दुनिया भर का ज्ञान ॥१८३॥

दुश्मन भागेंगे सभी, कर ऐसी हुँकार ।
नये दौर में साथ रख, कलम और तलवार ॥१८४॥

दुनिया मानेगी तभी, कर में हो तलवार ।
सज्जन की रक्षा करो, दुष्टों का संहार ॥१८५॥

सब कुछ बहता जा रहा, नहीं यहाँ ठहराव ।
सभी मुसाफ़िर हैं यहाँ, यह दुनिया है नाव ॥१८६॥

बचपन, यौवन तो गए, रहा बुढ़ापा देख ।
मौत खड़ी है द्वार पर, लिए भाग्य का लेख ॥१८७॥

कुछ भी रुकता है नहीं, सब कुछ है गतिमान ।
सूर्योदय होगा पुनः, दिवस हुआ अवसान ॥१८८॥

सफर कठिन हो जायगा, लादो मत सामान ।
पथ में सब मिल जायगा, कर ईश्वर का ध्यान ॥१८९॥

उत्तर दे हर प्रश्न का, किन्तु समय पहचान ।
क्या कितना कैसे कहें, पहले इसको जान ॥१९०॥

मन की इच्छाएँ कभी, होंगी नहीं समाप्त ।
मन वश करने के लिए, सन्त वचन ही आप्त ॥१९१॥

कभी हुआ ना विश्व में, इस जीवन का अन्त ।
युग से युग होता शुरू, कहते सन्त महन्त ॥१९२॥

जीवन तो संघर्ष है, जीतेगा हर जंग ।
साहस कभी न छोड़ना, होगी विपदा भंग ॥१९३॥

मंजिल मत समझो इसे, कहते इसे पड़ाव ।
हासिल होगी ही नहीं, यहाँ ज़रा-सी छाँव ॥१९४॥

अलग-अलग हैं रास्ते, अलग-अलग हैं रोड ।
सब की मंजिल एक है, अलग-अलग हैं मोड़ ॥१९५॥

बाधाओं से मत डरो, ये तो हैं भ्रम जाल ।
इन सबको तू तोड़ दे, होगा तभी बहाल ॥१९६॥

बिना रुके तू राह में, रखना आगे पाँव ।
निश्चित घर पा जायगा, पहुँचेगा तू गाँव ॥१९७॥

दीप जला कर सत्य का, मत हो तू भयभीत ।
तूफ़ानों में भी हुई, सदा इसी की जीत ॥१९८॥

अच्छी होती वह कथा, सुखमय जिसका अन्त ।
ख़ुशियाँ देगी वह सदा, कहते ज्ञानी सन्त ॥१९९॥

गरज गरज के आ रहे, बादल ये मगरूर ।
पर धरती के सामने, चलता नहीं गरूर ॥२००॥

तू किसान जनतंत्र का, तू ही बचा निपात ।
फसल बचाने के लिये, अब उखाड़ खरपात ॥२०१॥

कहते चाहे लोग सब, सूर्य हो गया अस्त ।
पर देने में रोशनी, वो हरदम है व्यस्त ॥२०२॥

नये ज़माने में 'विजय', कलम बनाले अस्त्र ।
ताकतवर के सामने, शास्त्र बनेगा शस्त्र ॥२०३॥

विपदा फिर से आयगी, लगते हैं आसार ।
जता रहा फिर से 'विजय', बहुत प्रेम व्यवहार ॥२०४॥

भ्रम है तेरा यह 'विजय', नाच रहा है नाग ।
आकर्षण के मोह से, भाग सके तो भाग ॥२०५॥

अभी हुआ प्रारम्भ है, और हुआ अभिमान ।
कैसे फिर तू पायगा, श्रेष्ठ शिखर सम्मान ॥२०६॥

परिवर्तन ही है नियम, बदल रहा हर रूप ।
जाते हैं सब छोड़कर, भिक्षुक हो या भूप ॥२०७॥

धरती तपती देखकर, रोया गगन विशाल ।
देख तमाशा ये 'विजय', दुनिया है ख़ुशहाल ॥२०८॥

जलती धरती देख कर, दौड़े आये मेह ।
क़ुदरत से ही सीख ले, हे मानव तू स्नेह ॥२०९॥

जीभ हिलाई तो मुझे, मिला बहुत अपमान ।
पूंछ हिलाई गैर ने, पाया वो सम्मान ॥२१०॥

जीभ चलाना छोड़ के, पूँछ हिलाना सीख ।
बिना झूठ के ऐ 'विजय', नहीं मिलेगी भीख ॥२११॥

नेताओं ने देश का, ऐसा किया विनाश ।
धर्म, अर्थ औ नीति पर, नहीं रहा विश्वास ॥२१२॥

लोकतंत्र में अब बचे, ये सुख के आधार ।
झूठ, तस्करी, छल कपट, और छद्म व्यवहार ॥२१३॥

लूट करो, चोरी करो, खुलकर अत्याचार ।
लोकतंत्र का आजकल, यही 'विजय' आधार ॥२१४॥

क़त्ल करो, चोरी करो, और करो फिर राज ।
नेता के लक्षण हुए, ये तीनो ही आज ॥२१५॥

मैं बतलाता हूँ 'विजय', नेता के गुण आज ।
नीच कर्म करले सभी, ना आए पर लाज ॥२१६॥

लोभी, कपटी, लालची, झूठा, बेईमान ।
लम्पट, खूनी, चोर, जो, उसको नेता मान ॥२१७॥

शासक बहरे हो गये, औ' अंधा है न्याय ।
सचिव हुये गूँगे सभी, क्या होगा अब हाय ॥२१८॥

व्यापारी राजा बने, सचिव हो चापलूस ।
हो खजांची चोर तो, राज्य सदा मनहूस ॥२१९॥

भाई चाहो भरत सा, तो पहले बन राम ।
चाहो उत्तम फल अगर, तो सुन्दर कर काम ॥२२०॥

हँसकर रोकर हर तरह, सहना है चुपचाप ।
पर सत्ता के सामने, कहना कुछ भी पाप ॥२२१॥

मंत्री बनने के लिये, माँग रहे जो भीख ।
जनता के दुःख-दर्द की, नहीं सुनेंगे चीख ॥२२२॥

भीख माँगता वोट की, बोल रहा है झूठ ।
ऊपर से दिखता हरा, भीतर से है ठूंठ ॥२२३॥

शूर वीर योद्धा बहुत, फिर भी होती हार ।
दल के दलदल में फँसी, है अपनी सरकार ॥२२४॥

भ्रष्टाचारी हैं रिहा, ख़ूनी हुये फरार ।
सच्चाई फाँसी चढ़े, झूठों की सरकार ॥२२५॥

अंधे हैं कानून सब, बहरी है सरकार ।
कौओं का सम्मान है, कोयल को दुत्कार ॥२२६॥

जिसके शासन में कभी, दुःखी हुआ मज़दूर ।
वह भी आँसू ख़ून के, रोयेगा भरपूर ॥२२७॥

रौंद रहे हो यह धरा, बैठ रथों पर आप ।
बीच राह खुल जायंगे, एक दिवस सब पाप ॥२२८॥

आँसू हैं ये ख़ून के, रोया हिन्दुस्तान ।
अब तू मारा जायगा, झूठे बेईमान ॥२२९॥

चिंता है सरकार को, सत्ता चली न जाय ।
मैं सिंहासन पर रहूँ, देश भले लुट जाय ॥२३०॥

अंधे-बहरे स्वार्थ में, डूबी है बुनियाद ।
राजनीति में सब वही, कौन सुने फरियाद ॥२३१॥

मज़दूरों की अब यहाँ, कौन सुनेगा चीख ।
शासन उनके नाम पर, मांग रहा है भीख ॥२३२॥

फैल रही है हर तरफ़, दावानल की आग ।
साहब हैं पर मौज में, खेल रहे हैं फाग ॥२३३॥

पाच साल मैं लूट लूँ, पाँच साल तू लूट ।
जनता ये लड़ती रहे, इनमें डालो फूट ॥२३४॥

बिना पंख के देखिये, गधे उड़ रहे आज ।
सत्ता पा जनतंत्र में, ख़ूब भरी परवाज ॥२३५॥

कछुआ ही जनतंत्र में, सिखा रहा है दौड़ ।
घोड़े नाक़ाबिल हुए, गधे लगाते होड़ ॥२३६॥

बकरी के भी पाँव में, नाक रगड़ता शेर ।
खिला रहा है प्रेम से, मीठे मीठे बेर ॥२३७॥

भारत का जनतंत्र से, खूब बढ़ा है मान ।
अपराधी ख़ुश हैं सभी, ख़ूब चढ़े परवान ॥२३८॥

जगह नहीं है जेल में, हुआ नहीं नुकसान ।
संसद में बैठा दिए, देकर के सम्मान ॥२३९॥

पढ़-लिखकर मत कर अरे, जीवन तू बेकार ।
नेता बन अपराध कर, यह जीवन का सार ॥२४०॥

बेगुनाह मारे गये, क़ातिल हुये फ़रार ।
बेलगाम जनतंत्र में, फैला भ्रष्टाचार ॥२४१॥

घूमो खूब विदेश तुम, ख़ूब बटोरो माल ।
चिन्ता करो न देश की, छोड़ो इसका हाल ॥२४२॥

कुछ भी तो बदला नहीं, हाल हुए बदहाल ।
अब सियार शासन करें, ओढ़ शेर की खाल ॥२४३॥

फिर दंगे होने लगे, फिर नफ़रत की आग ।
स्याह धुँए के नाग ये, लील गये सब राग ॥२४४॥

और दिखावा मत करो, हाथी जैसे दन्त ।
पालन कर कर्तव्य का, बन जाएगा सन्त ॥२४५॥

अब तक भ्रम में थे सभी, हम हैं अब आज़ाद ।।
पर वैसे ही हाल हैं, वैसे ही बरबाद ॥२४६॥

भारत में ही है 'विजय' सर्व धर्म समभाव ।
वैसा ही लगने लगे, जिसमें मिलता आब ॥२४७॥

दलों गुटों के बीच में, बँटा हुआ है देश ।
ऐसे ही मिट जायँगे, कुछ न रहेगा शेष ॥२४८॥

साफ सूपड़ा कर दिया, चोर बहुत दमदार ।
यह सम्भव जब भ्रष्ट हो, घर का चौकीदार ॥२४९॥

पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं, भारत के सब लोग ।
नेता भी सब मस्त हैं, खूब कर रहे भोग ॥२५०॥

सत्ता में जो हैं वही, हरिशचन्द्र के बाप ।
और विपक्ष में हैं यदि, तो दुनिया के पाप ॥२५१॥

बागडोर देना उसे, करे सही निर्देश ।
वरना इस जनतंत्र में, तू ही है सर्वेश ॥२५२॥

शिक्षा मंत्री बन रहे, अनपढ़ और गँवार ।
राजनीति में योग्यता, नहीं चाहिए यार ॥२५३॥

एक लगा दस पायगा, राजनीति व्यापार ।
असली नेता ही करे, खुलकर भ्रष्टाचार ॥२५४॥

बतलाता हूँ सीख ले, नेता के आचार ।
ख़ून करे, चोरी करे, बोले झूठ हजार ॥२५५॥

झूठ बोलना आ गया, तो तू सफल सुजान ।
सिंहासन पा जायगा, और मिले सम्मान ॥२५६॥

छाँव फूल फल दे रहे, बिना भेद के वृक्ष ।
शासन को भी चाहिये, रहे सदा निष्पक्ष ॥२५७॥

सिर्फ तमाशा देखती, कैसी है सरकार ।
सत्ता ही जब मौन है, कौन करे दरकार ॥२५८॥

इसके जैसी विश्व में, और नहीं है ताब ।
जगमग जगमग हो रहा, कांकरिया तालाब ॥२५९॥

पावागढ़ के शिखर पर, माँ का है दरबार ।
मुक्ति अभय पा जायगा, जो पहुँचा उस द्वार ॥२६०॥

राजनीति में आइये, धुल जायेंगे पाप ।
वरना सच के साथ भी, ग़ुनहगार हैं आप ॥२६१॥

लोकतन्त्र में सत्य है, सत्ताधारी पक्ष ।
भरा हुआ है झूठ से, पूरा सदन विपक्ष ॥२६२॥

मूरख जनता रात दिन, बस किस्मत को कोस ।
पर चुनाव के वक्त में, कभी न रखते होश ॥२६३॥

नेता को मालूम है, जाग गये यदि लोग ।
तो उनका भी एक दिन, चढ़ जायेगा भोग ॥२६४॥

ऊपर से लड़ते मगर, मिलकर करते भोग ।
नेताओं की चाल को, नहीं समझते लोग ॥२६५॥

सत्ता पाकर आपने, किया सिर्फ व्यापार ।
इसीलिए बेहद यहाँ, फैला भ्रष्टाचार ॥२६६॥

लोकतंत्र में भूल से, पूछा अगर सवाल ।
तो सत्ता के सामने, होगा तू बदहाल ॥२६७॥

चापलूस को मानती, देश भक्त सरकार ।
प्रश्न किया तो समझ लो, हो गए तुम गद्दार ॥२६८॥

शोभित होते द्वार पर, कुत्ता चौकीदार ।
घर में आ जाये अगर, घर भर सब बीमार ॥२६९॥

सोने हीरे से जड़ा, पर जूता है यार ।
मालिक कैसे बन गया, यह है चौकीदार ॥२७०॥

सिंहासन पर है डटा, झूठों का सरदार ।
हाथ जोड़ सम्मुख खड़ा, सच का पहरेदार ॥२७१॥

झूठ, कपट, लम्पट सभी, हो जाये स्वच्छंद ।
उस शासन का शीघ्र ही, हो जाता है अन्त ॥२७२॥

बहुत दिनों के बाद फिर, कूक सुनी है आज ।
मन सितार झंकृत हुआ, और बज उठे साज ॥२७३॥

मादक तेरे नैन हैं, और गुलाबी गाल ।
कमर लचीली और फिर, बलखाती यह चाल ॥२७४॥

पायल रुनझुन कर रही, नथुनी देती ताल ।
कंगन दोनों हाथ के, बजा रहे करताल ॥२७५॥

हँसी गुलाबी अधर की, चितवन भरी निगाह ।
बस ख्वाबों में देखकर, भरते रहते आह ॥२७६॥

बगिया में ख़ुशबू उड़े, कली हो गई फूल ।
मन्द पवन में मस्त हो, फूल रहा है झूल ॥२७७॥

अगर 'विजय' है साथ में, तो पतझर मधुमास ।
और जुदाई में लगे, ज्यों दुगुना मलमास ॥२७८॥

इन आँखों में डूबकर, मरना है स्वीकार ।
सम्मोहक है आपके, पायल की झनकार ॥२७९॥

मोहक तेरी हर अदा, मतवाले हैं नैन ।
तुझे देखने के लिये, रहते हैं बेचैन ॥२८०॥

मृगनयनी गजगामिनी, चंद्रमुखी कचनार ।
अद्‌भुत अतुल अमूल्य है, तेरा रूप अपार ॥२८१॥

तेरा मुखड़ा देखकर, मेरी होती भोर ।
मेरे जीवन में ख़ुशी, तुझसे चारों ओर ॥२८२॥

चंदन जैसा है बदन, और सुनहरे बाल ।
नागिन जैसी चाल है, और गुलाबी गाल ॥२८३॥

टीका सोहे माँग में, बिंदी सोहे भाल ।
कंगना सोहे हाथ में, होठों पर रंग लाल ॥२८४॥

कमर लचीली देखकर, मन में उठा खयाल ।
ऊपर कितना बोझ है, मैं लूँ इसे सँभाल ॥२८५॥

आँख नशीली देख कर, भूल गया संसार ।
बिना पिये ही चढ़ गया, कैसा गजब खुमार ॥२८६॥

पहना दूँ तुमको प्रिये, गलबहियों का हार ।
मन मंदिर में लूँ छिपा, देख न ले संसार ॥२८७॥

मन के मंदिर में बिठा, खूब करूँ मनुहार ।
चाहो तो अर्पण करूँ, प्राणों का उपहार ॥२८८॥

मन में हो बस आप ही, इन आँखों में आप ।
मिलने पर मिट जायगा, तन-मन का संताप ॥२८९॥

तप्त हृदय में आपकी, दूरी का संताप ।
शीत लहर भी लग रही, जेठ मास का ताप ॥२९०॥

उसके चितवन में बसी, हरक्षण मेरी साँस ।
पाऊँगा जब मैं उसे, पूरी होगी आस ॥२९१॥

हँसकर तेरा बोलना, वे कजरारे नैन ।
कानो में रस घोलते, तेरे मीठे बैन ॥२९२॥

नीली आँखे झील-सी, ये काजल की रेख ।
विश्व मोहिनी सुंदरी, जरा इधर भी देख ॥२९३॥

पड़ती मेरे कान में, जब कोयल की कूक ।
आती तेरी याद तब, मन में उठती हूक ॥२९४॥

चाहे ले लो जान तुम, लेकिन तोड़ो मौन ।
द्वार हृदय के खोल दो, घाव दे गया कौन ॥२९५॥

सावन की मस्ती भरी, वह उन्मादी रात ।
गलबहियाँ डाले पिया, करते रहते बात ॥२९६॥

लाल गाल, कंपित अधर, मुकुलित पूरा गात ।
हमको अब तक याद है, पिया मिलन की रात ॥२९७॥

शीशे में मुँह देखकर, खुद से ही शरमाय ।
नजर चुरा कर हँस रही, मन उसका अकुलाय ॥२९८॥

पिया मिलन की है घड़ी, और जिया घबराय ।
बात पिया की याद कर, मन ही मन मुसकाय ॥२९९॥

आँख झुके घबराय मन, दिखे वही हर बार ।
ये लक्षण बतला रहे, तुझे हुआ है प्यार ॥३००॥

उस बिन लगता मन नहीं, सदा रहे वह पास ।
नहीं ख़त्म हो मिलन यह, बस इतनी है आस ॥३०१॥

क्या सोचा क्या कह रही, भूल गयी सब बोल ।
मिलकर के ख़ुश हो गयी, बजा रहा मन ढोल ॥३०२॥

रिमझिम-सी बौछार ये, लगा रही है आग ।
सावन में साजन नहीं, फूट गये हैं भाग ॥३०३॥

रोम-रोम पुलकित हुआ, आँख हुई अनिमेष ।
पिया मिलन को आ रहे, आया है संदेश ॥३०४॥

विरह वेदना में उसे, पिया दिखें चहुँ ओर ।
सदियों जैसी रात ये, नहीं हो रही भोर ॥३०५॥

बिन साजन क्या झूलना, पेंग बढ़ाये कौन ।
सावन ऐसा लग रहा, भोजन ज्यों बिन नोन ॥३०६॥

पता नहीं कब हो रही, सुबह दोपहर शाम ।
विरह वेदना में 'विजय', झुलसे आठों याम ॥३०७॥

हर आहट पर चौंकती, क्या आया संदेश ।
दशा बावली हो गयी, पिया गये परदेश ॥३०८॥

ना ना ना ना कर रही, लेकिन मन में चाह ।
बाँहों में भर लें पिया, सुख की निकले आह ॥३०९॥

दुनिया सब सूनी हुई, भरती रहे उसास ।
जाने कब आयें पिया, बस यादें हैं पास ॥३१०॥

फैली लाली गाल तक, बिखरे बिखरे बाल ।
अस्त-व्यस्त श्रृंगार ये, पिया मिलन के हाल ॥३११॥

मीठा प्यारा दर्द है, होठों पे मुस्कान ।
बहुत अदा से बोलती, 'हटो, हुई हल्कान' ॥३१२॥

लाली लेकर गाल से, भोर हो गयी लाल ।
अँगड़ाई ले उठ गयी, मन का मिटा मलाल ॥३१३॥

मैं रूठूँ तो डाल दें, गलबहियों का हार ।
मन खिल जाता है 'विजय', जब करते मनुहार ॥३१४॥

वाम अंक फड़के इधर, कौआ बोले द्वार ।
सारे शुभ संकेत हैं, पिया करेंगे प्यार ॥३१५॥

मिल के ख़ुश ऐसी हुई, गाती है मल्हार ।
होती बारीश प्यार की, रिमझिम ज्यों बौछार ॥३१६॥

मुखड़ा पिय का देख के, नाच रहा मनमोर ।
सबसे प्यारा विश्व में, है मेरा चितचोर ॥३१७॥

पिय के सीने से लगी, हुई शर्म से लाल ।
माघ माह में भी 'विजय', दिखे पसीना भाल ॥३१८॥

पिया मिलन की चाह में, करती है शृंगार ।
मन उत्तेजित हो रहा, अब होगा अभिसार ॥३१९॥

ना जाने कब आयंगे, तकती रहती राह ।
आग उगलती हर समय, तप्त हृदय की आह ॥३२०॥

उछल कूद करती हुई, बढ़ी नदी की धार ।
पर पिय से मिलकर हुई, खुद ही पारावार ॥३२१॥

कभी किसी से आपने, किया नहीं है प्यार ।
उतर नहीं सकता कभी, चढ़े नशा यह यार ॥३२२॥

आप साथ में हैं अगर, तो डर की क्या बात ।
होती हो तो हो भले, सदियों लम्बी रात ॥३२३॥

नाम यही रोशन करे, कर बेटी पर नाज ।
गांठ बांध ले यार तू, बता रहा हूँ राज ॥३२४॥

माँ, बेटी, पत्नी, बहन, हैं नारी के रूप ।
दुनिया तो इसके बिना, लगने लगे कुरूप ॥३२५॥

यही बढ़ायेगी सदा, दो-दो घर का मान ।
बेटी से ही पायगा, गुणशाली संतान ॥३२६॥

माँ बनकर जो विश्व की, बनती पालनहार ।
वह चण्डी बनकर करे, दुष्टों का संहार ॥३२७॥

नारी से ही विश्व को, गति मिलती अविराम ।
इसके बिना न आ सके, कृष्ण रहें या राम ॥३२८॥

माँ से पा संस्कार जब, श्रेष्ठ बने संतान ।
जग में तब मिलता उसे, मान और सम्मान ॥३२९॥

दुनिया के हर क्षेत्र में, नारी की है पैठ ।
इसके बिना न चल सके, विश्व जायगा बैठ ॥३३०॥

बेटी से ही वंश को, मिलती है संतान ।
फिर भी धीरज से सदा, सहती सब अपमान ॥३३१॥

झुक कर मां के चरण में, कर ले पश्चाताप ।
मिल जाये आशीष तो, धुल जायेंगे पाप ॥३३२॥

बेटी की किलकारियाँ, बड़ी ख़ुशी की बेल ।
ख़ुशहाली ले आयगी, दुःख को देगी ठेल ॥३३३॥

प्रेम, ख़ुशी, सम्पन्नता, बने रहें दिन रात ।
बेटी के ही रूप में, अगर मिले नवजात ॥३३४॥

बेटी है गौरव सदा, है यह कुल की आन ।
रत्न बड़ा अनमोल है, रख इसका तू ध्यान ॥३३५॥

तेरे कर्मों से अगर, ख़ुश होंगे भगवान ।
तो बेटी के रूप में, पायेगा वरदान ॥३३६॥

कुलटा नारी तो सदा, करती है व्यभिचार ।
मान और अपमान का, करती नहीं विचार ॥३३७॥

माँ के जैसा कौन है, माँ तो है बेजोड़ ।
माँ की तुलना के लिये, कौन करेगा होड़ ॥३३८॥

पत्नी, बेटी, बहन है, और कभी है सास ।
माँ के रूप अनेक हैं, माँ का सब में बास ॥३३९॥

माँ की ममता भी मिले, और पिता का प्यार ।
नेह बहन का बन्धु का, ये सुख अपरम्पार ॥३४०॥

झेल प्रसव की वेदना, देती है संतान ।
ऐसी मां का देवता, भी करते सम्मान ॥३४१॥

माता ने जीवन दिया, तुझमें माँ की जान ।
मिटा दुःखों के तम सभी, तू बनजा दिनमान ॥३४२॥

भूख प्यास दुख सब सहे, सहे सभी अन्याय ।
सुत को सुख देने करे, माता सभी उपाय ॥३४३॥

लाड़ प्यार में हो रही, माँ की सुबहो शाम ।
बेटा, बेटी, घर, बहू, जीवन यही तमाम ॥३४४॥

माँ को पहले पूज लो, फिर पूजो भगवान ।
तो जीवन में पायगा, बिन माँगे वरदान ॥३४५॥

सबकी चिन्ता छोड़ दे, ले माँ का आशीष ।
सफल शिखर पा जायगा, उन्नत होगा शीश ॥३४६॥

तेरे सुख के ही लिये, सह लेती हर ताप ।
माँ को जीवन में कभी, मत देना संताप ॥३४७॥

माँ के आँचल से मिले, प्रेम निडरता ज्ञान ।
माँ की ममता ने गढ़े, बड़े-बड़े इन्सान ॥३४८॥

सदियों से यह विश्व तो, माँ से है गतिमान ।
ज्ञानी दानी वीर सब, हैं इसकी संतान ॥३४९।

आँचल से ममता बहे, चरणों में है स्वर्ग ।
माँ की सेवा से मिले, दुनिया में अपवर्ग ॥३५०॥

मिट जाते दुःख दर्द सब, पाकर माँ का स्नेह ।
जैसे तपती धूप में, शीतल जल का मेह ॥३५१॥

माँ की खातिर बह जाय, बूँद-बूँद सब खून ।
माँ से ही यह विश्व है, माँ के बिन सब सून ॥३५२॥

रक्षा करती पालती, माँ में है हर रूप ।
जननी है यह विश्व की, और ज्ञान का कूप ॥३५३॥

सेवा कर आशीष ले, और विश्व को जीत ।
असरदार माँ की दुआ, यह है सीधी रीत ॥३५४॥

देख ख़ुशी संतान की, सब दुख जाती भूल ।
माँ है ये हँसकर सदा, सह लेती हर शूल ॥३५५॥

घर रूपी इस वृक्ष का, माँ ही तो है मूल ।
पनप रहे हर शाख में, ख़ुशियों के फल-फूल ॥३५६॥

धर्म और कर्त्तव्य की, माँ है पैरोकार ।
पर जतलाती ही नहीं, वह अपने अधिकार ॥३५७॥

कब किसको क्या चाहिये, सबका रखती ध्यान ।
जानबूझ कर माँ रही, बस ख़ुद से अनजान ॥३५८॥

पाप-पुण्य, सच-झूठ को, क्षण में लेती जान ।
माँ अपने सन्तान का, रखती पूरा ध्यान ॥३५९॥

माँ काली बनकर करे, अरि पर शरसंधान ।
रौद्ररूप धर दुष्ट की, ले लेती है जान ॥३६०॥

मुझसे सुख का हो रहा, लगातार संवाद ।
मेरे सर पर है अभी, माँ का आशीर्वाद ॥३६१॥

पिता नहीं तो कुछ नहीं, दुनिया है बेजान ।
है इसकी फटकार में, छिपा हुआ वरदान ॥३६२॥

पथ की चिन्ता छोड़ दे, मंजिल का कर ध्यान ।
मत होना भयभीत तू, आयेंगे व्यवधान ॥३६३॥

जन्म दिवस पर दे रहा, शुभकामना अपार ।
मान और सम्मान से, पाओ सिद्धि हजार ॥३६४॥

जन्म दिवस पर आपको, मेरा यह उपहार ।
जन्म-जन्म तक आपको, याद करे संसार ॥३६५॥

ख़ूब उड़े, उड़कर छुए, आसमान का छोर ।
किन्तु न छूटे हाथ से, उस पतंग की डोर ॥३६६॥

विपदा से भयभीत हो, क्यों बदले तू राह ।
शूरवीर हर हाल में, कब करते हैं आह ॥३६७॥

तुझे मिला है विश्व का, ज्ञान और विज्ञान ।
तू ही सच्चे अर्थ में, ऋषियों की संतान ॥३६८॥

पूछ रहा था जो अभी, उत्सुकता से हाल ।
वह ज़हरीला साँप है, कभी न उसको पाल ॥३६९॥

उछल-उछलकर चल रहा, क्यों वह इतना आज ।
सिंहासन ज्यों पा गया, या राजा का ताज ॥३७०॥

पत्थर में जो है छिपा, नहीं दिखेगा यार ।
मूर्तिकार सच्चा मिले, तो पाए आकार ॥३७१॥

पढ़ सकता कोई नहीं, ये है जीवन रेख ।
नेक कर्म का श्रेष्ठ फल, यही लिखा है लेख ॥३७२॥

चिंता में रहता सदा, हर बेटी का बाप ।
उसको जीवन में कभी, नहीं मिले संताप ॥३७३॥

धीरज धर हो जायंगे, तेरे सारे काम ।
चलता चल धीरे सही, पा जायेगा धाम ॥३७४॥

मान और सम्मान से, चाहो जग में नाम ।
प्रेम सदा मन में रखो, कर्म करो निष्काम ॥३७५॥

पहले से मालूम था, यदि मंज़िल है दूर ।
फिर क्यों आया राह पर, होकर तू मग़रूर ॥३७६॥

तन मन सब थक जाय जब, हो दिमाग भी कुंद ।
सब कुछ उस पर छोड़ दे, छंट जाएगी धुंध ॥३७७॥

जीवन में मिलता नहीं, मौका बारम्बार ।
अवसर आया लाभ का, मत चूको इस बार ॥३७८॥

बिना थके तू कर्म कर, मद्धम धीमी चाल ।
पा जायेगा सिद्धियाँ, होगा तू ख़ुशहाल ॥३७९॥

गद्दारों से प्यार की, मत करना उम्मीद ।
रोना इनके सामने, खोना अपने दीद ॥३८०॥

आज नहीं कल आयगा, अपना वक्त जरूर ।
औ' बिखरेगा टूटकर, उसका गर्व गरूर ॥३८१॥

समय कभी मत देखना, सुन लो बरख़ुरदार ।
पाना है आकाश तो, उड़ना पंख पसार ॥३८२॥

मंज़िल से पहले कभी, करना मत विश्राम ।
वरना तेरा श्रम 'विजय', हो जाये निष्काम ॥३८३॥

निश्चित है होनी अगर, इस जीवन की शाम ।
तो फिर खुलकर जी 'विजय', यह जीवन अभिराम ॥३८४॥

डरना मत तूफ़ान से, या आये सैलाब ।
हिम्मत रख होंगे सभी, पूरे तेरे ख़्वाब ॥३८५॥

सद्‌गुण के आधार पर, परख सदा इंसान ।
इससे तेरी ज़िन्दगी, होगी स्वर्ग समान ॥३८६॥

गद्दारी के दोष से, बचा रहे इंसान ।
अधम नीच यह कृत्य है, कहते संत सुजान ॥३८७॥

दुनिया तो हर हाल में, बोलेगी दो बोल ।
सच का साथ न छोड़ना, जीवन है अनमोल ॥३८८॥

सच के सूरज को कभी, बुझा न पाया झूठ ।
सच के बिना मनुष्य तो, लगता जैसे ठूंठ ॥३८९॥

सूखे सारे खेत हैं, सूने सब खलिहान ।
हाल यही सब देख के, चिंतित बहुत किसान ॥३९०॥

रात कहे दिन को अगर, तुम दिखला दो चाँद ।
मालिक चाहे तो कहो, बिल को भी तुम माँद ॥३९१॥

बेतुक बेसिर पैर की, कविता पर दे दाद ।
उसको रख भ्रम में यही, वो शायर उस्ताद ॥३९२॥

दें शिक्षा यदि प्रेम से, बच्चों को माँ-बाप ।
तो अच्छे संस्कार की, पड़ती उनपर छाप ॥३९३॥

खिन्न बहुत है आज मन, और बहुत बेज़ार ।
परिजन, प्रिय जन, स्वजन सब, लगते हैं बेकार ॥३९४॥

ये सिंहासन, कोष ये, नाम दाम सम्मान ।
इस मिट्टी में मिल गई, बड़े बडों की शान ॥३९५॥

जीवन के इस मोड़ पर, रुक कर पीछे देख ।
तो पायेगा आज तक, खिंची न कोई रेख ॥३९६॥

कभी किसी का भी 'विजय', करना मत अपमान।
मिलना सबसे प्रेम से, कर सबका सम्मान ॥३९७॥

ठग तो आया है उसे, लेकिन अब तू चेत ।
लौटायेगा एक दिन, इसको ब्याज समेत ॥३९८॥

भला कौन है विश्व में, और बुरा है कौन ।
विषय बड़ा गम्भीर है, तू हो जा बस मौन ॥३९९॥

सुलझा छोटे प्रश्न को, बन जा तू सरपंच ।
धीरे धीरे पायगा, एक बड़ा-सा मंच ॥४००॥

करो समीक्षा स्वयं की, करो स्वयं से बात ।
डूब गया है दिन अगर, टल जायेगी रात ॥४०१॥

सम्बन्धों को दूर तक, रखना है यदि साथ ।
अपनों के आगे कभी, फैलाना मत हाथ ॥४०२॥

सीता-सी पत्नी मिले, मिले भरत अभिराम ।
लक्ष्मण भी मिल जायगा, पहले बन तू राम ॥४०३॥

दोहों के इस विश्व में, ऊँचा नाम कबीर ।
आज 'विजय' के पास भी, है वैसी ही पीर ॥४०४॥

पापा की उँगली पकड़, चलो कहाँ तक आप ।
अवसर के पट पर 'विजय', दो दस्तक दो थाप ॥४०५॥

अथक परिश्रम से ही तो, मिलता अनुभव ज्ञान।
इसके बल पर ही मिले, दुनिया में सम्मान ॥४०६॥

दिखलाओगे आइना, दुनिया को यदि आप ।
तो बदले में आपको, वह देगा संताप ॥४०७॥

तुझे पराई क्या पड़ी, क्यों देता उपदेश ।
सुख से रहना है अगर, सुन मन का संदेश ॥४०८॥

दुनिया की सुनता रहा, दुनिया के जज़बात ।
अब कुछ मन की भी सुने, ख़ुद से कर लें बात ॥४०९॥

ख़ुद पर जब लिखने लगा, कलम हो गयी बन्द ।
शब्द सभी गुम हो गये, बिखर गये सब छन्द ॥४१०॥

झाका जब ख़ुद में 'विजय', काँप गये सब अंग ।
घना अँधेरा देख कर, स्वयं रह गया दंग ॥४११॥

कोशिश में था मैं बनूँ, सच की नयी मिसाल ।
लेकिन भ्रम में डालकर, मुझको किया हलाल ॥४१२॥

निर्णायक जब है वही, तो फिर चिंता छोड़ ।
निर्णय उसका है सही, जीवन तो है होड़ ॥४१३॥

विश्व 'विजय' चाहो अगर, तो रहना गतिमान ।
चलना ही जीवन यहाँ, रुकना है अवसान ॥४१४॥

तू सरिता की धार है, मैं हूँ जलधि विशाल ।
संयम रखना सीख ले, लहरें यूँ न उछाल ॥४१५॥

प्यास मिटा दे सुरसरी, कर सबका उद्धार ।
सागर में मिलना यही, तेरा जीवन सार ॥४१६॥

फूल हाथ में और रख, मुख पर तू मुस्कान ।
भाषा में अपनत्व तो, पायेगा सम्मान ॥४१७॥

कर्म सभी अपने करें, भूलें सब अधिकार ।
इन दोनों से जगत की, मिट जाए तकरार ॥४१८॥

सीधे सादे हैं नियम, सीधा सादा खेल ।
सीधी सीधी राह चल, कर मंजिल से मेल ॥४१९॥

जब तक देता प्यार था, खूब रहा अलमस्त ।
जबसे नफ़रत पाल ली, स्वयं हो गया पस्त ॥४२०॥

दुनियादारी है यही, जीवन है संग्राम ।
जैसा दोगे आप तो, वैसा होगा नाम ॥४२१॥

कैसे भी ज़िंदा रहो, चोरी कर या ख़ून ।
रोटी मिलनी चाहिये, हमको बस दो जून ॥४२२॥

शिक्षक-अभ्यागत सभी, मात-पिता भगवान ।
शीश झुका आशीष पा, बन जा तू इन्सान ॥४२३॥

निश्चित सबका है समय, जाना है जग छोड़ ।
तो फिर अच्छे कर्म कर, शुभ कर्मों को जोड़ ॥४२४॥

सहकर हर अन्याय को, दुख करता स्वीकार ।
तो तू मानव रूप में, है बिलकुल बेकार ॥४२५॥

तन की चिंता क्यों करे, हो जायेगा राख ।
कर्म किये जा श्रेष्ठ तू, होगी ऊँची साख ॥४२६॥

अच्छे की तारीफ़ कर, खल का सदा विरोध ।
इस शिक्षा को मत भुला, है मेरा अनुरोध ॥४२७॥

भोलापन था इसलिए, समझ न पाये चाल ।
दुशमन घर में घुस गया, और बन गया काल ॥४२८॥

धन दौलत इस विश्व की, करले अपने साथ ।
लेकिन दुनिया से तुझे, जाना खाली हाथ ॥४२९॥

है मकान मालिक वही, हमी किरायेदार ।
कोई बन सकता नहीं, धरती का सरदार ॥४३०॥

जीवन में ख़ुशहाल है, है अपनों का साथ ।
परमेश्वर ने रख दिया, सर पर तेरे हाथ ॥४३१॥

जेठ मास मध्याह्न की, यदि सह लेगा मार ।
तो सावन में पायगा, शीतल मस्त फुहार ॥४३२॥

जो होना है होयगा, जैसा जो भी हाल ।
बस में तेरे कुछ नहीं, तो क्यों करे मलाल ॥४३३॥

नहीं हुआ यदि सफल तू, मत हो कभी निराश ।
ढूँढ़ कमी क्या रह गयी, कर तू पुनः प्रयास ॥४३४॥

सफल शिखर पा जाय तो, मत करना अभिमान ।
सरल सहजता से रहो, इसमें ही कल्याण ॥४३५॥

मानव हो मानव रहो, कर मानव से प्रेम ।
प्रेम भाव से सब मिलें, ये ईश्वर का नेम ॥४३६॥

दुनिया है माया महल, मत खोना तू होश ।
धन-दौलत पाकर 'विजय', मत होना मदहोश ॥४३७॥

ताला यह संकेत है, क्षमा करें श्रीमान ।
और बुलावा चोर को, तेरा है सामान ॥४३८॥

क्षमा शोभती है तभी, जब तू हो बलवान ।
तू ख़ुद ही बलहीन तो, कौन करे गुणगान ॥४३९॥

मत कर छोटा मन 'विजय', मत कर डर की बात ।
निश्चित है दिन आयगा, जायेगी ये रात ॥४४०॥

हिम्मत कभी न हारना, जैसे हों हालात ।
बाधाओं को राह की, तू दे देगा मात ॥४४१॥

प्रेम घृणा अनुभव सभी, जीवन एक किताब ।
इसमें ही मिल जायंगे, तुझको सभी जवाब ॥४४२॥

राजा हो या रंक हो, चाहे हो मशहूर ।
इस दुनिया में तो 'विजय', सभी यहाँ मज़दूर ॥४४३॥

धन-दौलत वैभव सभी, जीवन हो भरपूर ।
पर विधना के सामने, हर कोई मजबूर ॥४४४॥

ग़ैरों का दुख देखकर, रोयें तेरे नैन ।
यह मानवता है 'विजय', यह ईश्वर की देन ॥४४५॥

मत छलना उसको कभी, जो है तेरे साथ ।
तनहा तू रह जायगा, कौन बढ़ाये हाथ ॥४४६॥

मालिक मत बनना कभी, कर ईश्वर की आस ।
कल उसका था ये मगर, अब है तेरे पास ॥४४७॥

अगर बुराई वह करे, कर दे उसको माफ़ ।
करने दे वह जो करे, तू मन को रख साफ ॥४४८॥

अगर करे वह क्रोध तो, शांत रहो चुप आप ।
सुखा नहीं सकता समुद्र, कभी धूप का ताप ॥४४९॥

सावधान रहना 'विजय', देख करेगा घात ।
फिर से दुश्मन कर रहा, मीठी-मीठी बात ॥४५०॥

ऐसा होता है 'विजय', सम्मुख मंज़िल देख ।
शिथिल अंग होते सदा, यह कैसा है लेख ॥४५१॥

सफल 'विजय' कैसे हुआ, नहीं ख़ास यह बात ।
मगर सफल जो भी हुआ, वही यहाँ अभिजात ॥४५२॥

सफल शिखर यदि चाहिये, तो कर सही विचार ।
मन में जैसे भाव हों, वही हुआ व्यवहार ॥४५३॥

कुछ दिन से ऐसा हुआ, मेरा कुंद दिमाग ।
भावों के पनघट लगी, मरघट जैसी आग ॥४५४॥

रगड़ी जाती है कलम, कभी न कहती रोक ।
इसके मन में भी यही, सच कहने का शौक ॥४५५॥

नदी किनारे आपकी, डूब रही है नाव ।
शांत चित्त कर लो 'विजय', और सँभालो भाव ॥४५६॥

पेट भरे जो विश्व का, कहते उसे किसान ।
पूजा करनी चाहिए, मान उसे भगवान ॥४५७॥

काम समय पर हो अगर, तो वह है स्वीकार ।
मरने पर औषध मिले, तो वह है बेकार ॥४५८॥

वह समझेगा ही नहीं, कर बातें दो टूक ।
प्यार-शराफ़त छोड़ दे, समय जायगा चूक ॥४५९॥

मरकर भी ज़िंदा रहे, ऐसा कर कुछ काम ।
तू भी तो इतिहास में, करले अपना नाम ॥४६०॥

मौज-शौक में हो गया, तू ख़ुद ही गुमनाम ।
जीवन तेरा व्यर्थ है, किया नहीं कुछ काम ॥४६१॥

देखी जब घर शाम को, बच्चों की मुस्कान ।
पल में छूमंतर हुई, दिन की सभी थकान ॥४६२॥

बिलख-बिलख क्यों रो रहे, नहीं पिघलता दुष्ट ।
दीन हीन बनकर तुम्हीं, इसको करते पुष्ट ॥४६३॥

घुट-घुट कर तू क्यों मरे, तू भी माँग हिसाब ।
वरना इसकी खोल दे, कालिख भरी किताब ॥४६४॥

एक बार छल जो करे, कर दे उसको माफ़ ।
बार बार लेकिन करे, तो फिर कर दे साफ ॥४६५॥

मंदिर मस्ज़िद जा नहीं, मत माला तू फेर ।
प्रेम सभी से कर तुझे, मुक्ति रही है टेर ॥४६६॥

सज्जन, शिक्षक, सन्त का, मात्र एक ही काम ।
रचे सुयोग्य समाज को, सहकर पीर तमाम ॥४६७॥

सीख भले तू कुछ नहीं, इतना सीख जरूर ।
टूटा है इस विश्व में, सबका गर्व गुरूर ॥४६८॥

बार-बार क्या देखता, अपनी हाथ लकीर ।
बना कर्म से भाग्य तू, बोले संत फकीर ॥४६९॥

सागर पाँव पखारता, जिनके बारम्बार ।
सोमनाथ की गाय सब, महिमा अपरम्पार ॥४७०॥

और एशिया में कहीं, नहीं पायंगे शेर ।
ये तो बस गिरनार में, ही करते हैं सैर ॥४७१॥

लो बिल्ली के भाग से, छींका टूटा आज ।
चिड़िया भी अब कह रही, मैंने मारा बाज ॥४७२॥

धोखा खायेगा वहीं, जहाँ किया विश्वास ।
सावधान रह तू सदा, कर न किसी से आस ॥४७३॥

कोई कुछ कहता यहाँ, भले धरो तुम कान ।
पर करना केवल वही,जो लो मन में ठान ॥४७४॥

उसको उलझाते रहो, और न होगा खेल ।
ना नाचेगी राधिका, ना हो नौ मन तेल ॥४७५॥

भ्रम होता हो तो सदा, पूछ लीजिये राह ।
सहज मिले मंजिल तुम्हें, सभी कहेंगे वाह ॥४७६॥

श्रम से ही पा जायगा, तू मन चाही ताब ।
धीरे धीरे ही सही, पूरे होंगे ख़्वाब ॥४७७॥

जो भी चाहे रात दिन, उसका ही धर ध्यान ।
जोर लगा पा जायगा, निश्चित इसको मान ॥४७८॥

दुखी हुये हैं सब यहाँ, गैरों का सुख देख ।
श्रम से तू भी ले बना, अपनी किस्मत रेख ॥४७९॥

देख किनारे आ गई, इस जीवन की नाव ।
आहिस्ता से देखकर, संभल के रखें पाँव ॥४८०॥

मत विरोध करना बहुत, जब हो तू मझधार ।
चालाकी से तू चला, पकड़ ठीक पतवार ॥४८१॥

गर्भ अंधेरे से लड़ा, डर को देकर मात ।
पहली जीवन जंग को, जीता यह नवजात ॥४८२॥

जब कुछ वश में है नहीं, तो क्यों देता जान ।
जितना कर सकते करो, और करें भगवान ॥४८३॥

समय नहीं यदि चूकते, बन जाती कुछ बात ।
अब तो दिन भी ढल गया, और हो गयी रात ॥४८४॥

दुखियों के बदहाल पर, छलके अगर न आँख ।
दिल उसका पत्थर समझ, जीवन उसका राख ॥४८५॥

शाम हुई दिन ढल गया, डर की क्या है बात ।
चलने दे फिर जाम तो, गहराये जब रात ॥४८६॥

कोरोना की ये सजा, ख़त्म करो भगवान ।
ज्ञान और विज्ञान का, उतर गया अभिमान ॥४८७॥

ख़ुशियाँ, वैभव सुख सभी, वो ही है दातार ।
तू इस लायक था नहीं, मान बहुत आभार ॥४८८॥

रुकना तो बस मौत है, ये तो है मझधार ।
साहिल थोड़ी दूर है, अभी न हिम्मत हार ॥४८९॥

प्रेम अहिंसा की यहाँ, कब तक होगी बात ।
और दोस्ती नाम पर, सहें कहाँ तक घात ॥४९०॥

भैंस न समझे बीन को, नाच हुआ बेकार ।
लाठी ही तू मार बस, और ज़रा दुत्कार ॥४९१॥

आओ फिर से हम नया, शुरू करें अध्याय ।
प्रेम रहे बस दरमियाँ, सुख का यही उपाय ॥४९२॥

वृद्धाश्रम संस्कृति नई, पनपी चारों ओर ।
ऊषा में भी दिख रही, मुझको काली कोर ॥४९३॥

जीवन की हर धूप में, है ये शीतल छाँव ।
आँच स्वयं सह कर पिता, देंगे तुमको ठाँव ॥४९४॥

विद्यालय के मित्र सब, बहुत आ रहे याद ।
धूम मचाते खेलते, क्या दिन थे शमशाद ॥४९५॥

आहिस्ता से चल जरा, चारों तरफ़ निहार ।
ले उसको भी साथ जो, तुझको रहा पुकार ॥४९६॥

हाँफ जायगा दौड़ मत, धीरे से चल यार ।
जीवन तो संघर्ष है, चलना है निर्धार ॥४९७॥

हृदय पसीजा ही नहीं, देख पराई पीर ।
अब उसकी ही मृत्यु पर, कौन बहाए नीर ॥४९८॥

नया अनोखा कुछ नहीं, जिस पर बोलें आप ।
नया तरीका है मगर, वही पुराना जाप ॥४९९॥

कब कितना कैसे कहें, मूल यही है ज्ञान ।
यही सीख पाया नहीं, तो सब कुछ अज्ञान ॥५००॥

सीमा में ही रह सदा, मत मर्यादा तोड़ ।
सह कर थोड़ी पीर तू, दिल को दिल से जोड़ ॥५०१॥

सत्य और है झूठ क्या, कर लो तुम पहचान ।
वरना भ्रम में डाल कर, ले लेंगे सब जान ॥५०२॥

रक्षक ही करने लगे, तक्षक जैसे काम ।
सर्वनाश के पूर्व ही, उन पर कसो लगाम ॥५०३॥

मत घबराना तुम 'विजय', अगर हो गई शाम ।
नये काम के ही लिए, नये बना आयाम ॥५०४॥

अंग्रेजी के सामने, हिन्दी है लाचार ।
जरा मरण के बीच में, ज्यों रोगी बेज़ार ॥५०५॥

भाषाओं में विश्व की, हिन्दी बहुत सशक्त ।
इसमें मन के भाव सब, हो सकते हैं व्यक्त ॥५०६॥

हिन्दी भाषा है सरल, है सटीक व्यवहार ।
जैसा लिखते हैं 'विजय', वैसा ही उच्चार ॥५०७॥

जो आया सम्पर्क में, उसे मिला है प्यार ।
दुश्मन होगा अधमरा, हिन्दी में ललकार ॥५०८॥

काम करो चुपचाप तुम, देकर पूरा ध्यान ।
काम स्वयं बतलायगा, दुनिया लेगी जान ॥५०९॥

फ्रिज, फियाट औ फ्लेट सब, किश्तों के परिणाम ।
अब भोजन के वास्ते, बची न एक छदाम ॥५१०॥

सन्नाटा है हर तरफ़, बीहड़ हैं सब बाग ।
मानवता भय ग्रस्त है, कैसी है यह आग ॥५११॥

स्वार्थ सिद्धि के वास्ते, तू देता है घूस ।
क्षण आए परमार्थ का, हो जाता कंजूस ॥५१२॥

बचना है तुझको 'विजय', तो चुप घर में बैठ ।
कोरोना ने पा लिया, तो मुर्दे-सा ऐंठ ॥५१३॥

कोरोना है वायरस, दिखता नहीं जनाब ।
इस दुश्मन का विश्व में, अब तक नहीं जवाब ॥५१४॥

कोरोना के रोग का, है बस यही उपाय ।
आपस में सबसे 'विजय', दूरी रक्खी जाय ॥५१५॥

निश्चय जीतेगा 'विजय', मन में रख विश्वास ।
कोरोना के असुर का, होगा शीघ्र विनाश ॥५१६॥

कोरोना के सामने, 'विजय' डटे दिन रात ।
पुलिस, सफाई, डॉक्टर, यही करेंगे मात ॥५१७॥

कोरोना बतला रहा, सीमाएँ मत लाघ ।
देखो क़ुदरत कर रही, स्वयं संतुलन साध ॥५१८॥

कोरोना से समर में, जीता हिन्दुस्तान ।
देख तमाशा रह गई, दुनिया भी हैरान ॥५१९॥

बतलायेंगे देखना, ऐसा 'विजय' उपाय ।
मानवता बच जायगी, कोरोना मर जाय ॥५२०॥

ताकत पर इतना 'विजय', मत गुरूर कर चीन ।
मिट्टी में मिल जायगा, होगा बहुत मलीन ॥५२१॥

मानवता के वास्ते, अब तो रुक जा चीन ।
दानव बनकर कर रहा, क्यों तू कर्म मलीन ॥५२२॥

समझाओ इसको ''विजय'', आपे में रह चीन ।
वरना शीघ्र बजायगा, भारत तेरी बीन ॥५२३॥

नीच कर्म में मग्न है, पूरा मनुज समाज ।
कौन किसे रोके यहाँ, सबके सब सरताज ॥५२४॥

स्वार्थ, कपट, छल, घात सब, इस जमात के मूल ।
हम ही सबसे श्रेष्ठ हैं, यही बड़ी है भूल ॥५२५॥

फुनगी पर की मौज को, चिड़िया करती याद ।
शहर बसे जंगल कटे, कौन सुने फरियाद ॥५२६॥

नैतिकता से आज तक, नहीं मिला सुख चैन ।
घृणा पनपती ही रही, रहा सदा बेचैन ॥५२७॥

आया है वो गाँव से, सीधा उसको मान ।
किन्तु उसे छेड़ा 'विजय', तो फिर तू ही जान ॥५२८॥

भ्रम में है तू आज तक, मैं तो हूँ आज़ाद ।
तू गुलाम ही है 'विजय', आक़ा हैं आबाद ॥५२९॥

वे हमको भरमा गये, पश्चिम ही है श्रेष्ठ ।
हम भी कैसे मूर्ख हैं, उन्हें मानते ज्येष्ठ ॥५३०॥

छिपे रहो घर में 'विजय', होगा यही प्रहार ।
तभी कोरोना शत्रु की, होगी जग में हार ॥५३१॥

वर्तमान शिक्षा 'विजय', बस पोथी के दास ।
हम से सब कुछ छिन गया, अहं बचा है पास ॥५३२॥

भौतिक सुख की चाहने, तोड़ दिये परिवार ।
सुविधा भोगी हो गया, आज 'विजय' संसार ॥५३३॥

है पश्चिम की सभ्यता, मानवता से दूर ।
दंभ, कपट, छल ही 'विजय', है इसमें भरपूर ॥५३४॥

भौतिकता की राह में, नहीं तनिक विश्राम ।
मरने तक तुझको 'विजय', मात्र दौड़ से काम ॥५३५॥

विद्यालय ही कर रहे, विद्या का व्यापार ।
जाय भला फिर देश से, कैसे भ्रष्टाचार ॥५३६॥

गला फाड़ चिल्ला रहे, छोड़ सभी सुर ताल ।
भारतीय संगीत का, बुरा हो गया हाल ॥५३७॥

लगता है बरगद 'विजय', है बबूल का पेड़ ।
अगर परखना चाहते, जरा इसे दो छेड़ ॥५३८॥

सच्चाई के नाम का, बजा रहा है ढोल ।
लेकिन सच ये है 'विजय' इसमें ही है पोल ॥५३९॥

विकृतियों से भरी हुई, नाच गान अश्लील ।
ऐसी फिल्में देश को, 'विजय' जायगी लील ॥५४०॥

सैक्स, स्टंट, सस्पेंस से, भरी आज की फिल्म ।
इनमें अब होता नहीं, किसी तरह का इल्म ॥५४१॥

नये तरीके सीख ले, पूरी होगी साध ।
ये फिल्में सिखला रहीं, कैसे हों अपराध ॥५४२॥

फैशन के ही नाम पर, अब रहते हैं नग्न ।
प्रतिमाएँ आदर्श की, 'विजय' हो गई भग्न ॥५४३॥

पित्जा-बर्गर और फिर, कोकाकोला पान ।
सड़े खाद्य के साथ में, जैसे हो विषपान ॥५४४॥

कौन राग में गा रहा, तू जीवन का गीत ।
हँसता है या रो रहा, ऐ मेरे मन-मीत ॥५४५॥

कहाँ जा रहा काफ़िला, ना मंज़िल ना राह ।
नहीं जानते लोग कुछ, रहबर भी गुमराह ॥५४६॥

विद्यालय मण्डी बने, शिक्षक हुए दलाल ।
सत्ता के आगोश में, शिक्षा है बेहाल ॥५४७॥

खूब कमाई है 'विजय', शिक्षा के व्यापार ।
दोनों हाथों लूट ले, मत कर सोच विचार ॥५४८॥

इसी तरह बढ़ते रहे, ये अंग्रेजी स्कूल ।
भाषाएँ इस देश की, होंगी ही निर्मूल ॥५४९॥

भौतिकवादी सभ्यता, है पश्चिम की देन ।
तेजी से चारों तरफ़, फैल रही दिन रैन ॥५५०॥

मुक्त और स्वच्छंद हो, घूम रहा सैयाद ।
सम्मति शासन की मिली, कौन सुने फरियाद ॥५५१॥

बड़बोले थे इसलिए, करा दिया है मौन ।
नियती के सम्मुख यहाँ, बोलेगा भी कौन ॥५५२॥

कभी किसी भी काम में, होती है यदि देर ।
और उचित कारण नहीं, यही बड़ा अंधेर ॥५५३॥

स्वार्थ, लोभ, मद से यहाँ, टूट रहे परिवार ।
अपने तक सीमित हुआ, जग का सब व्यवहार ॥५५४॥

हालत बदतर हो गई, टूट गई सब आस ।
सूखा से हैरान थे, उस पर ये मलमास ॥५५५॥

सच ही जीतेगा सदा, यह कहने की बात ।
झूठों को ही मानते, यहाँ सदा अभिजात ॥५५६॥

दुनिया के हर दर्द की, भले मनाऊँ खैर ।
पर अपनों से त्रस्त हूँ, क्या कर सकते गैर ॥५५७॥

खेत, बैल, साधन सभी, जिसके वह मज़दूर ।
लाठी जिसके हाथ में, वह मालिक भरपूर ॥५५८॥

सीख ख़ुशामद का हुनर, यही कला है आज ।
इसके बल पर याद रख, सँवरेंगे सब काज ॥५५९॥

बहू ले गयी पुत्र को, बेटी को दामाद ।
हम दोनों के बीच ही, होता अब संवाद ॥५६०॥

किया नहीं कुछ भी कभी, कहता बरख़ुरदार ।
सीना फटता बाप का, जीवन से बेज़ार ॥५६१॥

ग़लत काम वो ख़ुद करे, हमको देता दोष ।
पिटता फिर हर बार ही, कैसा नीच पड़ोश ॥५६२॥

थू-थू दुनिया कर रही, है कितना बेशर्म ।
नीच कर्म फिर भी करे, इसका है यह धर्म ॥५६३॥

शिक्षक कहता स्वयं को, पर है वेतनदार ।
ट्यूशन, रिश्वत, छलकपट, करता भ्रष्टाचार ॥५६४॥

ज्ञान दान के नाम पर, शिक्षा का व्यापार ।
रोकेगा अब कौन जब, शामिल हो सरकार ॥५६५॥

अनपढ़ सब मालिक हुए, दुर्बल सब सरताज ।
पढ़े लिखे नौकर हुए, यही दशा है आज ॥५६६॥

मोबाइल पर हो रहे, कवि सम्मेलन खूब ।
कविता पढ़ पाओ सनद, और मिटाओ ऊब ॥५६७॥

कवि सम्मेलन में हुआ, बस फूहड़ परिहास ।
और विदूषक मसखरे, करते हैं उल्लास ॥५६८॥

समाचार सब बिक रहे, बिकते हैं अख़बार ।
पत्रकारिता बन गई, चाट मसालेदार ॥५६९॥

पत्रकार रहता अगर, सच्चाई के साथ ।
कट जाते निश्चित 'विजय', भ्रष्टाचारी हाथ ॥५७०॥

पत्रकारिता ने किया, हाल सभी बेहाल ।
चारों ओर बिछा दिया, भ्रम का माया जाल ॥५७१॥

सच्चा मरणासन्न है, झूठा हुआ निहाल ।
लोकतंत्र का ख़ूनकर, तू भी हो ख़ुशहाल ॥५७२॥

कविताओं को देखकर, कलम हो गई बन्द ।
तुकबंदी बेहाल है, हार गए हैं छन्द ॥५७३॥

नये दौर में हो रहा, कौओं का सम्मान ।
कौन सुने इस दौर में, अब कोयल की तान ॥५७४॥

गीत सराहे जा रहे, कौओं के श्रीमान ।
समारोह में हो रहा, कोयल का अपमान ॥५७५॥

पहले जैसे हैं नहीं, अब भारत के गाँव ।
शहरों को भी मात दें, ऐसे चलते दाँव ॥५७६॥

सच कड़वा होता नहीं, यह मिसरी की जात ।
स्वाद झूठ का ही चखा, बस इतनी-सी बात ॥५७७॥

इस दुनिया में आज तक, धन का सारा खेल ।
पास न हो धन ही अगर, सुख से कैसा मेल ॥५७८॥

कर्जे में डूबा हुआ, है बदहाल किसान ।
उस पर सूखे ने किया, अब खाली खलिहान ॥५७९॥

ऐसे ही बढ़ते रहे, यदि शहरों के पाँव ।
तो निशान रह जायंगे, यहाँ कभी थे गाँव ॥५८०॥

भूख कराती है यहाँ, दुनिया भर के पाप ।
अस्मत भी बाज़ार में, बेच रहे हैं आप ॥५८१॥

दुनिया में मशहूर था, यह उत्सव का देश ।
लेकिन अब इस दौर में, बिखर गया परिवेश ॥५८२॥

यही किया था आपने, अब कैसा अफ़सोस ।
भौतिक सुख की दौड़ में, किया नहीं सन्तोष ॥५८३॥

शेर कभी भी शेर का, करता नहीं शिकार ।
लेकिन आदमखोर है, यह मनुष्य गद्दार ॥५८४॥

उत्सव प्रेमी लोग हम, खेल रहे थे फाग ।
दुश्मन ने उस फाग में, हाय लगादी आग ॥५८५॥

सब जीवों में श्रेष्ठतम, है केवल इन्सान ।
हरकत इसकी देखकर, पछताता भगवान ॥५८६॥

तेरा मन संवेदना, और दया से हीन ।
पशुता से भरपूर तू, मानवता से दीन ॥५८७॥

दोषी बरी करा दिया, लम्पट हुआ वकील ।
आसमान को छू रही, दुख की ये कंदील ॥५८८॥

सज्जन कारावास में, हैं स्वतंत्र सब चोर ।
पुलिस व्यवस्था में यही, तम छाया घनघोर ॥५८९॥

न्यायालय से न्याय की, सबको थी उम्मीद ।
मगर न्याय ने खो दिये, रो-रो कर के दीद ॥५९०॥

नेता, पुलिस, वकील ने, ऐसा बदला देश ।
चेहरे सब विकृत हुए, छिन्न-भिन्न परिवेश ॥५९१॥

पाँवों में छाले पड़े, भूखे नन्हें पेट ।
दीन हीन को दे रहा, जेठ धधकती भेंट ॥५९२॥

ख़ून पसीना एक कर, देता है जो अन्न ।
सुख से वंचित है वही, क्यों रहता है भग्न ॥५९३॥

सूखे सूखे खेत हैं, खाली है खलिहान ।
भगवन, सूनी आँख से, देखे तुझे किसान ॥५९४॥

हाय, न जाने विश्व का, क्या होगा भगवान ।
एक दूसरे के हुए, दुश्मन खुद इंसान ॥५९५॥

तुम भी भगवन हो गये, ज्यों अंधा कानून ।
माल मलाई है कहीं, कहीं नहीं है नून ॥५९६॥

कुआँ, बावड़ी, नद नदी, सूखे हैं तालाब ।
खेत, धरा, मानव सभी, कहाँ से पाय आब ॥५९७॥

ये विपदा बस है यही, क़ुदरत का अभिशाप ।
फलीभूत अब हो रहे, मानव के सब पाप ॥५९८॥

मौला, पीर, फकीर क्या, स्वयं मिले भगवान ।
लेकिन मुश्किल है बहुत, मिल जाये इन्सान ॥५९९॥

जंगल में चर्चा बहुत, खूब मचा है शोर ।
शहर देख कर कह रहे, ये हैं आदम खोर ॥६००॥

अपराधी सारे यहाँ, उड़ा रहे हैं मौज ।
लूट रहे हैं, देश को, खूब कर रहे भोज ॥६०१॥

धोओ हाथ शराब से, गंगाजल को त्याग ।
इन पापों में है छिपा, सबका अपना भाग ॥६०२॥

कोई भी राजा बने, मैं तो हूँ बस दास ।
फ़र्क़ न आएगा कभी, या बदले इतिहास ॥६०३॥

आपाधापी में 'विजय', छूट गये सुख चैन ।
इसीलिए अन्तिम समय, हृदय बहुत बेचैन ॥६०४॥

अन्त बहुत नजदीक है, मन भी बहुत अधीर ।
हाथ पैर अब काँपते, डगमग हुआ शरीर ॥६०५॥

ये जनता की भूल थी, झूठा था विश्वास ।
निर्मम कातिल से लगी, जीवन की थी आस ॥६०६॥

तुम कुछ दे सकते नहीं, करते हो बकवास ।
क़ातिल से कैसे करें, कभी दया की आस ॥६०७॥

भूखे नंगे बदन हैं, भग्न हृदय बेहाल ।
मज़दूरों को इस तरह, किसने किया हलाल ॥६०८॥

बढ़ते-बढ़ते बढ़ गई, आपस में ही बात ।
बात कहीं पर खो गई, दे जूता दे लात ॥६०९॥

आओ मिलकर ढूँढ़ लें, कुछ नवीन उपचार ।
सभी दिशा में बढ़ रहे, देखो अत्याचार ॥६१०॥

जीवन भर काटी 'विजय', दुख के तम की डोर ।
लेकिन कभी न हो सकी, सुख की कोई भोर ॥६११॥

रामायण पढ़ते नहीं, और न वेद-पुरान ।
अपनी संस्कृति का हमें, कैसे होगा ज्ञान ॥६१२॥

बोल नहीं सकता अभी, गूँगा है यह देश ।
भाषा इसकी है नहीं, और नहीं है भेष ॥६१३॥

पहन गेरुए वस्त्र तू, बनता है हैवान ।
तेरे कारण हैं दुखी, जो हैं संत सुजान ॥६१४॥

अगर किनारे पर 'विजय', डूबी तेरी नाव ।
तो इसके पीछे किसी, अपने का है दाँव ॥६१५॥

शून्य हुआ परमार्थ औ', स्वार्थ हुआ भरपूर ।
प्रतिमायें आदर्श की, हैं सब चकनाचूर ॥६१६॥

लूटपाट, धोखा-धड़ी, बुझे हुए अरमान ।
गाँव आ गए शहर से, कितने बेईमान ॥६१७॥

बातें मानेंगे मगर, खीचेंगे भी पाँव ।
उन सबके तू जान से, पहले सारे दाँव ॥६१८॥

इन लोगों का रह गया, बस इतना ही काम ।
बैर भाव फैलाइये, हों चाहे बदनाम ॥६१९॥

विपदाओं की लग रहा, होगी फिर भरमार ।
प्यार बहुत जतला रहा, 'विजय' आजकल यार ॥६२०॥

ज़रा ख़ुशामद सीख ले, लगा सिफ़ारिश यार ।
तेरी नैया सहज ही, हो जाएगी पार ॥६२१॥

देखा है हमने 'विजय', ऐसा भी सत्कार ।
वही काट लेता गला, पहनाए जो हार ॥६२२॥

शिक्षा है इस देश की, स्मरण शक्ति का खेल ।
जो रटता वह पास है, जो समझा वह फेल ॥६२३॥

जिसके तीखे दाँत हैं, बड़े तेज नाखून ।
उस दहेज के दैत्य ने, पिया सभी का ख़ून ॥६२४॥

भौतिक सुख की चाह में, लगा रहे हैं दौड़ ।
अन्त नहीं इसका कहीं, ये कैसी है होड़ ॥६२५॥

जो औरों की राह में, बोते हैं बस शूल ।
मिले उन्हें कैसे भला, स्वच्छ सुगंधित फूल ॥६२६॥

प्यार, प्रशंसा, मित्रता, सभी स्वार्थ के नाम ।
सब बैठे हैं ताक में, कब हो अपना काम ॥६२७॥

ख़ुश होकर उसने सदा, ख़ूब जताया स्नेह ।
पर दिल कभी न मिल सका, मिली हमेशा देह ॥६२८॥

तलवे उसके चाटकर, खो देता ईमान ।
तो मैं भी, तेरी तरह, पा जाता सम्मान ॥६२९॥

चुप रहकर करता भले, तू सबकुछ स्वीकार ।
लेकिन तेरा मौन है, ख़ुद पर अत्याचार ॥६३०॥

आदत से मज़बूर हैं, इनका बस ये काम ।
बुरा सिर्फ आता नज़र, चाहे हों श्रीराम ॥६३१॥

पुण्य वही जो हम करें, और करे तो पाप ।
छाँव मिले शीतल हमें, भले सहें सब ताप ॥६३२॥

राम कथा क्या ध्यान से, सुनते हैं सब लोग ।
रावण जैसे कर्म हैं, ये कैसा है योग ॥६३३॥

देह प्रदर्शन हो रहा, ये कैसा परिधान ।
तन प्रभु का वरदान है, इसकी कीमत जान ॥६३४॥

पहले तन से नग्न थे, अब मन से भी नग्न ।
पश्चिम के सम्पर्क से, संस्कार सब भग्न ॥६३५॥

भुला दिया कर्त्तव्य को, याद रहा अधिकार ।
मूल यही मतभेद का, दुख का पारावार ॥६३६॥

मानेगा कोई नहीं, कोरा सच मत बोल ।
झूठ, अदाकारी ज़रा, पहले इसमें घोल ॥६३७॥

मर्यादा कुछ भी नहीं, ये सब हैं निर्लज्ज ।
फूहड़पन, अश्लीलता, इनसे फिल्में सज्ज ॥६३८॥

पत्थर से निर्मित किया, घर ये आलीशान ।
मन में भी पैदा हुआ, पत्थर का ईमान ॥६३९॥

आँगन गायब हो गये, छोटे हुए मकान ।
मन भी बौना हो गया, बढ़ा बहुत अभिमान ॥६४०॥

पहले चारों ओर थे, बरगद, नीम, बबूल ।
अब गमले चारों तरफ, उड़ती है बस धूल ॥६४१॥

भाँड़, भाट, कुलटा बनो, बहुत मिलेगा मान ।
नाच गान अश्लीलता, है इनकी पहचान ॥६४२॥

नंगेपन का हो रहा, खुलकर के व्यापार ।
मर्यादा का, शील का, मुखड़ा है लाचार ॥६४३॥

चकाचौंध से झूठ की, आकर्षित हैं लोग ।
शुचिता, समता, सादगी, नहीं किसी से योग ॥६४४॥

मिट्टी में मिल जायंगे, तेरे महल मकान ।
चार दिनों की ज़िन्दगी, इतना बड़ा ग़ुमान ॥६४५॥

मिट्टी के इंसान में, कितना भरा गरूर ।
जैसे इसके सामने, ईश्वर भी मज़बूर ॥६४६॥

खाता रहे कबाब औ', पीता रहे शराब ।
भला बता कैसे तुझे, मिलता रहे सवाब ॥६४७॥

जिस थाली में खा रहा, उसमें करता छेद ।
तुझे आसरा दे दिया, यही बड़ा है ख़ेद ॥६४८॥

भांड भंडैती कर रहे, खूब हुए खुशहाल ।
भीख मांगता सच यहाँ, झूठा मालामाल ॥६४९॥

कवि सम्मेलन में यहाँ, श्रोता हैं दो-चार ।
भांडों के दरबार में, लोगों की भरमार ॥६५०॥

लालच के युग में सदा, पद से है पहचान ।
गुणहीनों का ही यहाँ, होता है गुणगान ॥६५१॥

छन्द और सुरताल का, तनिक नहीं है ज्ञान ।
किन्तु महाकवि कह रहा, खुद को सीना-तान ॥६५२॥

बंगले में बेटा रहे, वृद्धाश्रम माँ-बाप ।
नये दौर का देखिये, ये कैसा अभिशाप ॥६५३॥

अब कविता के नाम पर, सभी हुए स्वच्छंद ।
करते हैं बकवास सब, कौन पूछता छन्द ॥६५४॥

ज्ञान नहीं कर्तव्य का, चाहें बस अधिकार ।
नये दौर में हो गया, ये कैसा संसार ॥६५५॥

भौतिक सुख की चाह में, दौड़ मची सब ओर ।
फँसकर माया मोह में, नाच रहा मनमोर ॥६५६॥

दैहिक सुख की एषणा, भौतिक सुख की चाह ।
आडम्बर में खो गई, जग की सच्ची राह ॥६५७॥

ईश्वर कितना सरल है, शातिर है इन्सान ।
पाप करे दिन-रात वह, माफ करे भगवान ॥६५८॥

धन के लालच ने तुझे, बना दिया शैतान ।
बुरे कर्म सारे किये, भुला दिया भगवान ॥६५९॥

कुत्ता पालेंगे मगर, मात-पिता हैं बोझ ।
होगा तेरे साथ भी, यही सभी कुछ सोच ॥६६०॥

वृद्धाश्रम में जा रहा, होकर वृद्ध उदास ।
तूने जो बाँटा वही, आया तेरे पास ॥६६१॥

तेरे मेरे में बँटा, यह सारा संसार ।
ईश्वर भी बाँटे गये, और बँटा किरदार ॥६६२॥

समझ न आया कुछ मगर, फिर भी करता वाह ।
मूरख है या फिर किसी, मतलब की है चाह ॥६६३॥

लाभ मिले जिससे बड़ा, उससे करते प्रीति ।
करते उसकी आरती, दुनिया की यह रीत ॥६६४॥

सम्मानित होगा तभी, जब होगा धनवान ।
पाप सभी छिप जायंगे, होगा फिर गुणगान ॥६६५॥

देव पियें तो सोमरस, निर्धन पिये शराब ।
बड़े करें तो श्रेष्ठ है, छोटा करे ख़राब ॥६६६॥

तन से तो आज़ाद हैं, मन है अभी गुलाम ।
इसीलिए यूरोप को, झुकझुक करें सलाम ॥६६७॥

भाई भाई में 'विजय', अगर न होती फूट ।
तो दुशमन हमको कभी, कैसे लेता लूट ॥६६८॥

मंदिर-मस्जिद बन्द हैं, खुली शराब दुकान ।
कैसा जीवन जी रहा, कलियुग का इन्सान ॥६६९॥

जोर-शोर से हो रहा, शिक्षा का व्यापार ।
डूबे हैं आकण्ठ ये, राजा-साहूकार ॥६७०॥

भूले संस्कृति स्वयं की, खोए सब आदर्श ।
अंग्रेजी ने कर दिया, शिक्षा का अपकर्ष ॥६७१॥

भौतिक सुविधा सब मिली, मिला नहीं सुख-चैन ।
इसीलिये मन आज तक, बना रहा बेचैन ॥६७२॥

इतना भी तू दौड़ मत, ठहर ज़रा ले साँस ।
कर थोड़ा संतोष तो, दुख की निकले फाँस ॥६७३॥

यह दुनिया है मतलबी, देती है बस शूल ।
कह देगी यह आम को, काँटे दार बबूल ॥६७४॥

मेरे मन में आ गया, थोड़ा भी अभिमान ।
तो मैं मानूँगा नहीं, तुझको फिर भगवान ॥६७५॥

अपनापन होता नहीं, और नहीं सम्बन्ध ।
नये दौर में देखिये, होते हैं अनुबन्ध ॥६७६॥

तकनीकी युग में यहाँ, मानव हुआ मशीन ।
भाव सभी मन के मरे, और हृदय से हीन ॥६७७॥

नये दौर में हो रहे, सभी फेसबुक यार ।
झूठ, कपट, छल, बेहया, मानवता बेज़ार ॥६७८॥

मतलब से है दोस्ती, मतलब से है प्यार ।
मतलब अपना हल हुआ, बेमतलब संसार ॥६७९॥

चाहत है सबकी शिखर, नींव बने पर कौन ।
है पुकार सुख के लिये, कर्मों पर हैं मौन ॥६८०॥

चापलूस बन कर यहाँ, करो ख़ुशामद ख़ूब ।
और सिफ़ारिश ढूढ़ लो, ख़ूब चरो फिर दूब ॥६८१॥

अलग-अलग सम्बन्ध हैं, अलग-अलग है जात।
स्वार्थ कहीं, लालच कहीं, कुछ मज़बूरी बात ॥६८२॥

घर टूटा आँगन गये, बस रह गये मकान ।
पक्का लालच स्वार्थ है, कच्चे हैं बस कान ॥६८३॥

जुदा-जुदा सब हो गये, हुए जुदा परिवार ।
देखो अब बनने लगी, आँगन में दीवार ॥६८४॥

छोड़ो चिंता विश्व की, चिंता चिता समान ।
मस्त रहो खाओ-पिओ, लम्बी चादर तान ॥६८५॥

मोबाइल पर निभ रहे, सामाजिक सम्बन्ध ।
लेकिन हृदय कपाट तो, भीतर से हैं बन्द ॥६८६॥

सीखे 'हल्लो' 'हाय' औ', भूल गये आदाब ।
पश्चिम के ये चोंचले, कर देंगे बरबाद ॥६८७॥

लोगों को समझा रहे, करो सुखों का त्याग ।
मगर स्वयं ही लिप्त हैं, झूठा गाते राग ॥६८८॥

शून्य भले मैं अंक तू, पर इतना ले जान ।
मेरे बिन होता नहीं, तेरा दस गुण मान ॥६८९॥

भय दिखलाना छोड़ दे, लेकर थोड़ी आग ।
हम तो हंस कर खेलते, सूरज से भी फाग ॥६९०॥

आसन पर बैठा दिया, एक बताकर बात ।
योग्य नहीं साबित हुआ, तो मारेंगे लात ॥६९१॥

नई कोंपलें आयंगी, झड़ जाने दो पात ।
मत घबरा इससे 'विजय', चली जायगी रात ॥६९२॥

'विजय सतसई' से मिले, ज्ञान और विज्ञान ।
पुस्तक यह अनमोल है, पढ़ो लगाकर ध्यान ॥६९३॥

लिखी 'विजय' ने सतसई, प्रभु का आशीर्वाद ।
दीनबन्धु बिन आपके, कौन सुने फरियाद ॥६९४॥

दिखते यदि रावण बहुत, तो रख यह विश्वास ।
रघुवर के अवतार का, समय आ गया पास ॥६९५॥

चलो जलाएँ फिर नई, ऐसी 'विजय' मशाल ।
अँधियारा जग छोड़कर, स्वयं जाय पाताल ॥६९६॥

दीवारें आदर्श की, छत से झाँके ज्ञान ।
नीवों में है सादगी, मेरा यही मकान ।।६९७।।

मुश्किल का कर सामना, डरना नहीं जनाब ।
ध्यान लगा पा जायगा, इसके कई जवाब ।।६९८।।

चापलूस बन ठग रहा, वह जग को दिनरात ।
मुझको तो भाती सदा, सीधी सच्ची बात ।।६९९।।

आगे बढ़ना है अगर, छोड़ पराई आस ।
शुभ चिंतक हैं सब मगर, ख़ुद पर रख विश्वास ।।७००।।

तुझको सब कुछ मानना, मेरी ही थी भूल ।
लेकिन भूल सुधारना, मेरा यही उसूल ।।७०१।।

आँधी रोके बीच में, या आये तूफ़ान ।
डरना मत सैलाब से, बढ़ता चल इन्सान ।।७०२।।

चलता चल डरना नहीं, मन में रख विश्वास ।
तू सच के है साथ तो, पायेगा आकाश ।।७०३।।

ख़ुश हो जाऊँ मैं अगर, न्यौछावर है जान ।
अड़ जाऊँ जिद पर अगर, गोबर ना दूँ दान ।।७०४।।

हूँ सीधा ब्राह्मण मगर, वंश है परशुराम ।
क्रोध अगर आ जाय तो, तेरा काम तमाम ।।७०५।।

सीधा सच्चा जान के, मत करना हैरान ।
चींटी ले लेगी 'विजय', हाथी की भी जान ।।७०६।।

कृष्ण भक्ति में शीर्ष हैं, भ्रमरगीत के सूर ।
मुझे मिलेगा एक दिन, वह पद 'विजय' जरूर ।।७०७।।

बाती मेरे हृदय की, दीपक 'विजय' शरीर ।
ज्ञानपुंज की ज्योति से, जगमग है तक़दीर ।।७०८।।

नन्हा दीपक ही सही, हूँ लेकिन दमदार ।
घने अँधेरे काँपते, माने मुझसे हार ।।७०९।।

सहज, सरल, व्यक्तित्व हूँ, नहीं करूँगा वार ।
लेकिन रक्षा के लिये, रखता हूँ तलवार ।।७१०।।

तुलसी, सूर, कबीर सब, कहते मुझसे ख़ास ।
डूब हृदय में तुम लिखो, रचो नया इतिहास ।।७११।।

ऊपर बैठा दे रहा, सबको दुख का भार ।
खींच धरा पर लाउंगा, मैं तेरा संसार ।।७१२।।

वह आया है गाँव से, मूरख उसे न जान ।
सीधा सादा है मगर, है सबकी पहचान ।।७१३।।

ख़ूब मचाते हो 'विजय', जगह-जगह उत्पात ।
जिस दिन मैं पा जाउंगा, कर दूँगा शह मात ।।७१४।।

साहस मेरा देख कर, मौत रही है भाग ।
अरे, लगा सकता 'विजय', पानी में भी आग ।।७१५।।

फ़ौलादी मेरा जिगर, है मजबूत शरीर ।
वचन निभाऊँगा सदा, जीवित अभी ज़मीर ।।७१६।।

श्रम को ऐसे साध की, जो चाहे मिल जाय ।
देख सफलता आपकी, ईश्वर भी मुसकाय ।।७१७।।

श्रम को इतना साध तू, हो ईश्वर हैरान ।
ख़ुश होकर फिर वह कहे, "अब तो ले वरदान" ।।७१८।।

जीवन मेरा है कलम, और कलम ही जान ।
लिखना मेरा धर्म है, बस इतनी पहचान ।।७१९।।

अनुभव सब दिल से लिखे, और लिखे जज़्बात ।
कभी सुखों की रोशनी, कभी दुखों की रात ।।७२०।।

भगवन की इच्छा यही, धरूँ हमेशा धीर ।
मानव की औक़ात क्या, जो मुझको दे पीर ।।७२१।।

पूरे पर्यावरण की, ले ली तुमने जान ।
नीचे धरती रो रही, ऊपर नभ हैरान ।।७२२।।

लौट रहे सब नीड़ को, कैसी सुन्दर शाम ।
ढलता सूरज दे रहा, उड़तों को विश्राम ।।७२३।।

क़ुदरत के ही कोप हैं, आँधी या तूफ़ान ।
छेड़ा है तू ने 'विजय', आया तभी उफान ।।७२४।।

पतझड़ की ऋतु देखकर, मत हो 'विजय' उदास ।
फिर से सावन आयगा, फिर होगा मधुमास ।।७२५।।

रिमझिम सावन में 'विजय', नाच रहा मनमोर ।
वन उपवन में छा गई, हरियाली सब ओर ।।७२६।।

प्यार तुझे हो जायगा, मन की खिड़की खोल ।
इन चिड़ियों के साथ तू, मीठी बोली बोल ।।७२७।।

बीज, खाद, श्रम और जल, यदि पा जाएँ खेत ।
लौटा देंगे ये तुम्हें, सब कुछ व्याज समेत ।।७२८।।

गमलों के युग में हुआ, चारों ओर विनाश ।
ख़त्म हुआ पर्यावरण, जंगल सत्यानाश ॥७२९॥

पौधों से तू प्रेम कर, इनमें भी है जान ।
जल देगा तू आज तो, फल देंगे धनधान ॥७३०॥

सागर, सरिता, कूप, सर, कर इनका सम्मान ।
यहीं तुझे करवायंगे, अमृत जल का पान ॥७३१॥

कोयल की सुन कूक ये, देख मोर का नाच ।
मन होता आने न दूँ, वन शोभा में आँच ॥७३२॥

कर लेती है संतुलन, क़ुदरत अपने-आप ।
करना कभी न अतिक्रमण, पायेगा संताप ॥७३३॥

हम क़ुदरत के नियम के, रहें सदा अनुकूल ।
जड़ समेत मिट जायंगे, अगर गये प्रतिकूल ॥७३४॥

अपना सीना चीर कर, धरती देती दान ।
मत बिगाड़ पर्यावरण, मान ज़रा अहसान ॥७३५॥

वन औषधि देते बहुत, देते हैं फल-फूल ।
इनके बल पर ही रहे, मौसम भी अनुकूल ॥७३६॥

जंगल, पर्वत, नद, नदी, रत्नों भरी ज़मीन ।
इनको ईश्वर मानकर, हो जाओ लवलीन ॥७३७॥

कहता है तू माँ इसे, और लगाता दाम ।
धरती को तूने किया, जगह-जगह नीलाम ॥७३८॥

धरती के ही गर्भ में, है रत्नों की खान ।
पर पाता उसको कि जो, श्रम करता इन्सान ॥७३९॥

केवल खारा जल नहीं, सागर का संसार ।
है विष अमृत सहित वह, रत्नों का भंडार ॥७४०॥

झरना पर्वत से गिरे, टूट टूट जल धार ।
फिर भी जीवन दे रहा, सह कर सबकी मार ॥७४१॥

जंगल पर्वत घूमती, मिला न कोई ठौर ।
सागर के आगोश में, है नदिया का छोर ॥७४२॥

चाहे टूटे शाख पर, कभी न तरु को छोड़ ।
जड़ें अभी मजबूत तो, कौन सकेगा तोड़ ॥७४३॥

तप्त ह्रदय-सी ये धरा, करना है यदि शांत ।
भेज बुलावा मेघ को, तब होगी बरसात ॥७४४॥

सावन के झूले पड़े, हरियाली सब ओर ।
खेतों में भी आ गयी, अब ख़ुशियों की भोर ॥७४५॥

धरती, जल, रवि, वायु, नभ, हैं ईश्वर के रूप ।
मानव प्रभु के रूप को, करता रोज कुरूप ॥७४६॥

नदियों को दूषित किया, वन को दिया उजाड़ ।
धरती डाली खोद सब, काटे सभी पहाड़ ॥७४७॥

प्राण वायु कैसे मिले, काटे सारे पेड़ ।
धरती का यह हाल है, अधिक खेत से मेड़ ॥७४८॥

पहले तो सूखा पड़ा, उस पर यह मलमास ।
ले लो दुनिया से विदा, छोड़ो जीवन आस ॥७४९॥

क़ुदरत भी चाहे उसे, जो उसके अनुकूल ।
निश्चित उसकी मृत्यु है, जो उसके प्रतिकूल ॥७५०॥

कभी न लड़ना चाहिए, इस क़ुदरत के साथ ।
क़ुदरत के आदेश सब, सदा चढ़ाओ माथ ॥७५१॥

तू उजाड़ता जा रहा, इस क़ुदरत की गोद ।
फिर भी करता कामना, मुझको मिले प्रमोद ॥७५२॥

आज नहीं मन लग रहा, मौसम बहुत उदास ।
जाने किसकी है जगी, मेरे मन में आस ॥७५३॥

कितनी सुंदर सृष्टि है, सम्मोहक है रूप ।
किन्तु स्वार्थ में मनुज ही, करता रहा कुरूप ॥७५४॥

गेंदा, जूही, मोगरा, महके हरसिंगार ।
आभा बहुत गुलाब की, खूब खिला कचनार ॥७५५॥

वर्षा, गर्मी, सर्दियाँ, बाढ़ और तूफ़ान ।
सब कुछ सहकर यह धरा, देती जीवन दान ॥७५६॥

छटा अनोखी है बहुत, इन्द्र धनुष के रंग ।
मनमोहक ये दृश्य भी, है सावन के संग ॥७५७॥

बेहद बदबू गंदगी, देख सभी हैं दंग ।
होता नहीं यक़ीन क्या, यही हमारी गंग ॥७५८॥

बचपन की बातें बहुत, आती मुझको याद ।
पचपन में फिर हो रहा, बचपन का अनुवाद ॥७५९॥

गिल्ली, डंडे, गेंद के, खेल बड़े मशहूर ।
बचपन के हर खेल में, मस्ती है भरपूर ॥७६०॥

राजारानी भूत के, किस्से वो दिन रात ।
सपनों में फिर भूत से, हम सब करते बात ॥७६१॥

इस जीवन की दौड़ में, पिछड़ गए सब खेल ।
बिछड़े मित्रों से भला, कैसे होगा मेल ॥७६२॥

पीछे-पीछे दौड़ना, वो कागज की नाव ।
जानबूझ कर भीगना, बारीश का वह चाव ॥७६३॥

बस्ता, पाटी, पेन ही, यही ज्ञान के मूल ।
आज भले ही लग रहे, ये सब ऊल जलूल ॥७६४॥

जब मिलते हैं प्रेम से, बचपन के वे यार ।
ऐसा लगता मिल गई, खुशियाँ अपरम्पार ॥७६५॥

वो मेले में घूमना, वो जादू के खेल ।
झूले ऊँचे थे बहुत, वो नन्हीं सी रेल ॥७६६॥

चाट पकोड़ी खाय के, फिर गुब्बारे फोड़ ।
खेल मदारी का बहुत, लगता था बेजोड़ ॥७६७॥

गोले में से आग के, झट से जाता कूद ।
चाकू में माहिर बहुत, कभी न होती चूक ॥७६८॥

बचपन में ही आयगा, मेले का आनंद ।
फिर तो बस कहलाइये, तुम कान्हा के नंद ॥७६९॥

लोट पोट हो धूल में, कभी न रहता ध्यान ।
फिर ऐसे ही हाल में, कर लेते जलपान ॥७७०॥

आँसू घड़ियाली बहा, कर देते हल्कान ।
चुप होते थे हम तभी, बात हमारी मान ॥७७१॥

बचपन के वो दिन 'विजय', बहुत आ रहे याद ।
पर लौटाए कौन अब, कहाँ करूँ फरियाद ॥७७२॥

●●●

संक्षिप्त साहित्यिक परिचय :

विजय तिवारी

जन्म तिथि	:	2 अगस्त 1963
जन्म स्थान	:	अहमदाबाद
वृत्ति	:	अध्यापक के पद से स्वैच्छिक निवृत्ति लेकर पूर्णत: साहित्य को समर्पित।

- संस्थापक एवं अध्यक्ष 'साहित्य सेतु परिषद', 'साहित्य सेतु अकादमी', (पंजीकृत संस्था) पूर्णत: साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्था जो राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत है।

• संस्थापक •

- **http://vtlibrary.com** – विश्व का सर्वप्रथम वेब पुस्तकालय।
- **विश्व हिन्दी साहित्य संस्थान** U Tube chenal।

• प्रकाशन •

- **'निर्झर'** काव्य संग्रह' सन् 1991, ध्रुव प्रकाशन, अहमदाबाद।
- **'फल खाए शजर'** ग़ज़ल संग्रह, सन् 1999,ध्रुव प्रकाशन, अहमदाबाद। (हिन्दी साहित्य अकादमी (गुजरात) एवं दि अखिल भारतीय सद्‌भावना ट्रस्ट द्वारा पुरस्कृत)
- **'आक़ा बदल रहे हैं'** ग़ज़ल संग्रह, सन् 2017, (हिन्दी साहित्य अकादमी (गुजरात) द्वारा पुरस्कृत)
- **'साहित्य, साहित्यकार और वैश्विक धरोहर'** शोध लेख संग्रह, सन् 2019, (हिन्दी साहित्य अकादमी (गुजरात) द्वारा पुरस्कृत)
- देश की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं एवं दो दर्जन से अधिक साझा काव्य संकलनों में रचनाएँ प्रकाशित।
- 'हिन्दी समिति **(इंग्लैंड)** का मुख पत्र' **पुरवाई, नोर्वे** से अंतरराष्ट्रीय पत्रिका **स्पाईल, अमेरिका** से प्रकाशित **विश्व विवेक, विश्वा,** देशना और कवितावली, **कैनेडा** से प्रकाशित '**हिन्दी चेतना**' में रचनाओं का प्रकाशन।

• सम्पादन •

- गुजरात हिन्दी विद्यापीठ का मासिक मुखपत्र **'रैन बसेरा'** का सम्पादन।
- **'धरा से गगन तक'** भारत सहित विश्व के दस राष्ट्रों के हिन्दी कवियों का सर्वप्रथम अंतरराष्ट्रीय हिन्दी काव्य संकलन।
- **'कहकशाँ-ए-ग़ज़ल'** भारत सहित विश्व के चार राष्ट्रों के ५० चुनिंदा शायरों की बेहद बेहतरीन और दिलकश ग़ज़लों का अद्‌भुत, अद्वितीय और बेमिसाल संकलन।
- **'धरा से गगन तक-२'** भारत सहित विश्व के इक्कीस देशों के हिन्दी रचनाकारों का अंतरराष्ट्रीय हिन्दी काव्य संकलन।

• विशेष सहभागिता •

- **'नेपाल के जनकपुर में आयोजित तृतीय अंतरराष्ट्रीय सेमिनार** 20 और 21 नवम्बर, 2021 को नेपाल के जनकपुर में आयोजित तृतीय अंतरराष्ट्रीय सेमिनार में Geowth of tourism industries through the development of Ramayan Circuit पर शोध लेख प्रस्तुत किया।

• सम्मान-पुरस्कार •

- हिन्दी साहित्य परिषद की ओर से सर्वश्रेष्ठ काव्य के लिए सन् 1992 में गुजरात के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम डों स्वरूप सिंह द्वारा प्रथम पुरस्कार पदक प्राप्त। श्रेष्ठ काव्य के लिए सन् 1993 में राज्यसभा की सदस्या श्री उर्मिलाबहन पटेल द्वारा पुरस्कार पदक प्राप्त।
- **'साहित्य सृजन सम्मानश्री'** 1997, नागपुर, **'साहित्य श्री सम्मान'** 1998, गुना (म.प्र.), **'साहित्य गौरव'** 1998, बिजनौर, (उ.प्र.), **'साहित्य शिरोमणि सम्मान'** 1998, जालौन, (उ.प्र.), **'लेखक श्री सम्मान'** 1998, बैतूल, (म.प्र.), **'काव्य वैभव श्री सम्मान'** 1998,नागपुर, (महाराष्ट्र), **'साहित्य सिंधु'** 1999, बैतूल, (.म.प्र.), **'रामचेत वर्मा गौरव पुरस्कार'** 1999, अहमदाबाद, **'सुधा वाणी सम्मान'** 1999, अहमदाबाद, **'कविवर मैथिलीशरण गुप्त सम्मान'** 2000, मथुरा (उ प्र), **'श्री सम्मान'** 2018, **'क्रान्तिधरा साहित्य अकादमी',** मेरठ, (उ प्र.), **'ज्ञानरत्न सम्मान'** 2019, **'वीरभाषा हिन्दी साहित्यपीठ',** मुरादाबाद, (उ.प्र.), **'हिन्दी साहित्य भूषण'** 2019, **'साहित्य मण्डल',** श्री नाथद्धारा (राजस्थान), **'काव्य शिरोमणि'** 2019, **'श्री श्रीसाहित्य सभा',** इन्दौर (म प्र), **'बेकल उत्साही स्मृति सम्मान'** के बी हिन्दी साहित्य समिति बदायूँ, (उ.प्र.), **'भाषा सहोदरी हिन्दी सम्मान'** 2019, दिल्ली, **'शायर हफीज़ मेरठी स्मृति सम्मान'** 2019, **'क्रान्तिधरा मेरठ साहित्य अकादमी',** मेरठ, (उ.प्र), **'प्रतिभा**

सम्मान' 2019, दिल्ली, **'श्रेष्ठ प्रतिभा सम्मान'** 2020, '**हिन्दी साहित्य अकादमी**', '**साहित्य साधक**' 2020, '**वीरभाषा हिन्दी साहित्यपीठ**', मुरादाबाद (उ.प्र.), **'श्रेष्ठ रचनाकार सम्मान'** 2020, अलीराजपुर, (म.प्र.), '**अखिल भारतीय मेधावी सृजन अवार्ड**', 2020, वर्धा (महाराष्ट्र), '**अंतरराष्ट्रीय हिन्दी गौरव सम्मान**', '**अनुबंध साहित्य भूषण सम्मान**' 2021, '**अखिल भारतीय अनुबंध फाउंडेशन**' (मुम्बई) द्वारा विशिष्ट सम्मान-2021, '**कविवर माखनलाल चतुर्वेदी सन्मान**–2022, हृदयांगन संस्था, मुंबई, '**अग्निशिखा गौरव सम्मान**', मुंबई–2022, अखिल भारतीय अग्निशिखा मंच, मुंबई, '**हृदयांगन रत्न सम्मान**' 2022, हृदयांगन संस्था, मुंबई, '**साहित्य शिरोमणि सम्मान**'–2022, श्री श्री साहित्य सभा, इंदोर । '**विद्यावारिधि सम्मान**' - हृदयांगन साहित्यिक संस्था (महाराष्ट्र), '**गंगा गोमुखी साहित्य भूषण सम्मान**' 2023, हिन्दी साहित्य गंगा संस्था, जलगांव (महाराष्ट्र), '**भारत रत्न सरदार पटेल साहब एवार्ड**' 2023, अखण्ड भारत राष्ट्रवादी सेवादल, (गुजरात), '**स्व. आशुतोष तिवारी सम्मान**' 2023, कादम्बरी, जबलपुर (म. प्र.), '**के. बी. स्मृति साहित्य शिरोमणि सम्मान**' 2023, के. बी. हिन्दी सेवा न्यास, बदायूं (उ. प्र.) '**साहित्य कीर्ति एवार्ड**' 2023, वडनगर, '**विशिष्ट साहित्य साधक सम्मान**' – 2024, बेस्टी एज्युकेशन एंड चैरिटेबटल ट्रस्ट (दोहा–कतर), '**देवभूमि सम्मान**' – 2024, उत्तराखंड कला एवं साहित्य मंच, ऋषिकेश (उत्तराखंड)

• विशेष •

- 'गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल द्वारा राज्य के हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में रचनाएँ प्रकाशित।
- 'गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल के मान्य लेखक, सम्पादक, समीक्षक, अनुवादक एवं प्रूफ रीडर ।
- 'मंच के सफल कवि एवं कुशल संचालक ।

• अति विशेष •

ईमेल : vijay.tiwari1998@gmail.com

सम्पर्क : A-202, क्रिश लक्जुरिया, केनेरा बेन्क के सामने, शाश्वत महादेव-3 के पासे, वस्त्राल, अहमदाबाद- 382418

मोबाइल : 9427622862

* * *

विजय तिवारी

मुझसे सुख का हो रहा, लगातार संवाद ।
मेरे सर पर है अभी, मां का आशीर्वाद ।।

जीवन भर काटी 'विजय', दुख के तम की डोर ।
लेकिन कभी न हो सकी, सुख की कोई भोर ।।

मानेगा कोई नहीं, कोरा सच मत बोल ।
झूठ अदाकारी जरा, पहले इसमें घोल ।।

भय दिखलाना छोड़ दे, लेकर थोड़ी आग ।
हम तो हंसकर खेलते, सूरज से भी फाग ।।

घर टूटा आंगन गये, बस रह गये मकान ।
पक्का लालच स्वार्थ है, कच्चे हैं बस कान ।।

भौतिक सुख की चाहे ने, तोड़ दिये परिवार ।
सुविधा भोगी हो गया, आज 'विजय' संसार ।।

बंगले में बेटा रहे, वृद्धाश्रम मां-बाप ।
नये दौर का देखिये, ये कैसा अभिशाप ।।

जीभ हिलाई तो मुझे, मिला बहुत अपमान ।
पूंछ हिलाई गैर ने, पाया वो सम्मान ।।

9 789387 861541

DOTCOM PUBLICATIONS®